अमृत विचार

लोक दर्पण

रविवार, 28 अप्रैल 2024 www.amritvichar.com

स्कूल से लेकर कॉलेज शिक्षा तक पहुंचे छात्रों को पाठ्यक्रम में शामिल किए गए विषय के क्रमिक विकास और उन बौद्धिकों के इतिहास बारे में खास जोर देकर कुछ नहीं बताया जाता जिनकी वजह से ज्ञान संवर्द्धन के बारे में जाना जा सके, उनके विचारों से परिचय पाया जा सके जिनकी वजह से नए ज्ञान का उत्तरोत्तर सृजन एवं संवर्द्धन होने से एक विषय के टेक्स्ट में वृद्धि होती रहती है। फिजिक्स, बायोलॉजी और केमिस्ट्री के जो टेक्स्ट कॉलेज के दिनों में पढ़े गए थे, पाठ्यक्रम सामग्री अब वैसी बिल्कुल नहीं है, मात्रा और गुणवत्ता दोनों में यह बढ़ी है। रिसर्च जर्नल्स की मार्फत नियमित रूप से विषय और इसकी शाखाओं से संबंधित लिट्रेचर के संपर्क में रहने की वजह से ही मालूम हो सकता है कि 'सब्जेक्ट' की प्रकृति क्या है और इसे क्यों और कैसे समझना है? ज्ञान का जो ताना-बाना इसके इर्द-गिर्द अब मौजूद है, इसके मायने और मूल्य क्या हैं, यह ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य ही तय करता है। एक विषय के विभिन्न पहलुओं के बारे में छात्रों का परिचय इस प्रक्रिया से ऐतिहासिक क्रम में अधिकांश टीचर्स नहीं करवाते जिससे छात्रों में विषय को रोचक तरीके से समझा जाए।

रणवीर सिंह फोगाट
सेवानिवृत्त अधिकारी
आईसीएमआर

मौलिक चिंतन का ह्रास करती छाया शिक्षा प्रणाली

सही से डिजाईन नहीं की गई किताबों को पढ़ने और इनमें से बेसिक जानकारी लेकर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट किए बिना ही नोट्स बनाकर स्टूडेंट्स को प्राइवेट ट्यूटर्स द्वारा दिए जाते हैं। आम और पारंपरिक नज़रिए से स्टूडेंट्स के लिए परीक्षा के नतीजे एक प्रकार के 'मेमोरी टेस्ट' अर्थात यादाश्त का इम्तिहान बनकर रह गए हैं। विषय के बारे में इनकी समझ को उसी स्तर पर बनाए हुए रखा गया जिस पर दिन में स्कूल का रेगुलर टीचर और अलस्सुबह या दोपहर बाद प्राइवेट ट्यूटर की भूमिका में नजर आने वाला व्यक्ति इन्हें रखना चाहा था। यादाश्त का स्तर जैसा होगा परीक्षार्थी वैसे ही हिसाब से टेक्स्ट को 'रिप्रोड्यूस' करते हुए परीक्षा में स्कोर लेगा। ट्यूशन को लेकर न केवल विकासमान देशों में शासकीय स्तर पर बल्कि यूनेस्को (यूनाइटेड नेशन्स एजुकेशनल, साइंटिफिक एंड कल्चरल आर्गेनाइजेशन) के अंतर्गत इंटरनेशनल इंस्टिट्यूट फॉर एजुकेशनल प्लानिंग में भी इस प्रवृत्ति के बारे में सन 1960 के दशक से ही चिंता व्यक्त की गई है।

क्या है शैडो एजुकेशन

यूनेस्को ने ट्यूशन को 'शैडो एजुकेशन' कहा और इस बारे में विद्वज्जनों के बीच आपसी विमर्श के दौरान अनेक बार अभियक्त किए गए विचारों का प्रकाशन सन 1999 में एक दस्तावेज़ -'द शैडो एजुकेशन सिस्टमः प्राइवेट ट्यूटरिंग एंड इट्स इम्प्लिकेशंस फॉर प्लानर्स', के रूप में किया। उक्त रिपोर्ट में कहा गया था कि चुनिंदा 17 देशों के 31 से 80 प्रतिशत तक की संख्या के छात्र प्राइवेट ट्यूट्रिंग लेते पाए गए। उक्त 17 देशों में से कुछ छात्र विकासमान देशों से और अन्य इंडस्ट्रियलाइज्ड एवं विकसित देशों के छात्रों लिए गए जिन्हें तुलना के लिए शामिल किया गया था।

शिक्षा की प्रकृति और इसके रूप के बारे में तो हमारे देश में भी बहुत अच्छी योजनाएं बनती रही हैं, लेकिन क्रियान्वयन के स्तर पर जिनके द्वारा विद्यालय, कॉलेज और विश्वविद्यालय को नियंत्रित किया जाता है, नतीजे अपेक्षानुकूल नहीं निकलते। सार्वजनिक वित्त पोषित, निचले स्तर की शिक्षा संस्थानों में तो हालत और खराब है क्योंकि यहां टीचिंग मेथडॉलॉजी और टीचर्स की ट्रेनिंग के अलावा संसाधनों की कमी, टीचर्स का रुझान और कमर्शियल एजुकेशन जैसे निजी हित बाधा बन कर खड़े हैं। सिलेबस में डाइवर्सिटी होना लोकल अनुकूलन के लिए जरूरी होता है जिसे प्रांतीय सरकारों द्वारा एजुकेशनल रिसोर्सेज के रूप में नियोजित करने की छूट है, लेकिन आजकल अधिकांश सर्टिफाइड स्कूल्स सीबीएसई के पाठ्यक्रम को प्राथमिकता देते हैं जोकि भारतवर्ष के सभी राज्यों में एक जैसा होता है। यह एक तरह का मोनो-कल्चरल ट्रेंड है और यूनेस्को इसकी सिफारिश नहीं करता। इसी तरह सन 2012 में एशियाई डेवलपमेंट बैंक द्वारा प्रकाशित दस्तावेज़-'शैडो एजुकेशनः प्राइवेट सप्लीमेंट्री ट्यूटरिंग एंड इट्स इम्प्लिकेशंस फॉर पालिसी मेकर्स इन एशिया', में शैडो एजुकेशन पर खुल कर बात हुई है। इस दस्तावेज में प्राइवेट ट्यूटरिंग की रेगुलेशन की बात करने के अलावा इसे एक अनिवार्य गतिविधि के रूप में शासकीय मान्यता देने की बात कही गई है। स्कूल से लेकर कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर तक के शैक्षिक विमर्श और सिलेबस प्लानिंग के बारे में चिंतन और दस्तावेजों की गुणवत्ता भारत में कहीं से भी निम्न स्तर की नहीं रही है। भारत में नॉन-कमर्शियल, नॉन-कॉन्ट्रैक्च्युअल ट्यूट्रिंग में ज्यादातर संख्या नियमित शिक्षकों की रहती है जिनमें अधिकतर छात्र विज्ञान विषयों के रहती हैं। यह बड़े पैमाने की गतिविधि है जिसमें रजिस्ट्रेशन किए जाने की बात शैक्षिक योजनाकारों के बीच कभी नहीं उठती। यह न तो व्यावहारिक और न ही, संभव।

'नेचर' और 'नर्चर'

प्रतिभा, प्रकृति प्रदत्त गुण है लेकिन जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है यह और विकसित होती है। इस बारे में 'नेचर' और 'नर्चर' पर बहुत विमर्श पहले ही हो चुका है कि दोनों में से उच्चतर कौन सा है। सिर्फ न्यूमेरिकल वैल्यूज देकर एक विषय के बारे में किसी छात्र की समझ का अंकन और आकलन करने वाली परंपरा को पिछड़ा हुआ माना जाने लगा है। ज्ञान को मैथमेटिकल वैल्यूज कैसे दी जा सकती हैं? इम्पीरियल कॉलेज ऑफ़ लंदन में स्टेटिस्टिक्स के प्रोफेसर डेविड जे. हैण्ड ने अपनी पुस्तक 'स्टेटिस्टिक्स -ए वैरी शार्ट इंट्रोडक्शन' में भी ऐसा कहा है। टीचर्स के लिए छात्र की 'इंटरनल एसेसमेंट' की एक प्रक्रिया अभी तक चालू है लेकिन टीचर्स के लिए इसे पूरा करने के लिए जो पद्धति शासकीय आदेशों के अनुसार विद्यमान है उसका स्तर पर्याप्त नहीं है और न ही इसकी प्रक्रिया उचित है।

यह प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जिसके जरिये से एक टीचर अपने स्टूडेंट की एक विषय के प्रति रुचि, और समझ, विषय के अंतर्गत इसके विभिन्न पक्षों और इनके अंतर संबंध और इसके एक्सटर्नल लिंकेजेज़ के बारे में अहसास से भरपूर एक स्तर के मौजूद होने का आकलन कर पाए। वर्ष में 160-180 दिन एक छात्र अपने टीचर के संपर्क में रहता है जिससे क्लास रूम और 'लैब' में इसकी परफॉरमेंस पर निगाह रहती है। इसी के अनुसार एक छात्र के बारे में निर्धारित पद्धति या व्यवस्था के अनुसार वह असेसमेंट को नुमेरिकल वैल्यूज में ही अभिव्यक्त करता है लेकिन इसके साथ एक नोट संलग्न नहीं करता। समग्र आकलन के बारे में टिप्पणी नहीं बनाई जाती, सिर्फ नंबर दिए जाते हैं। एसेसमेंट के लिए परीक्षा तो लिखित में महीनावार ली जाती है, जिसमें स्टूडेंट एक तरह से 'मेमोरी टेस्ट' देता है। जिसकी मेमोरी अच्छी है और ठीक से लिखना आता है उस छात्र की स्कोरिंग ऊंची हो जाती है, बाकी पिछड़ जाते हैं। नई शिक्षा नीति इस तरह की वैयक्तिक जरूरतों और पद्धति (इंडिविजुएलाइज्ड मेथड्स) के प्रति 'एक्सप्रेसिव' और संवेदनशील तो है, लेकिन इसका नतीजा दो कम-से-कम चार साल बाद ही मालूम हो सकता है। इसे तो अभी ही लागू किया गया है।

'हेजिमोनिक' और 'होमोजीनियस' छात्र

आम अनुभव है कि कुछ टीचर्स अपनी ही क्लास के स्टूडेंट्स को ट्यूशन लगाए जाने के लिए खुद के पास ही आने के लिए प्रेरित करते हैं। ध्येय है अतिरिक्त आमदनी करना। क्लास में तो ये टीचर टाइम-पास करते हैं और ट्यूशन पर आने के लिए बाध्य किए हुए स्टूडेंट्स को अपने नोट्स 'बेचते' हैं। वे स्टूडेंट्स ही ऐसा कर पाते हैं जिनके पेरेंट्स ट्यूशन के लिए अतिरिक्त धनराशि दे पाने में सक्षम होते हैं। इसकी पुष्टि उक्त यूनेस्को दस्तावेज़ भी करता है जिसमें लिखा है कि कुछ देशों में अभिभावक सरकारी फीस से 150 गुणा अधिक धनराशि ट्यूशन के लिए खर्च करते हैं। बने-बनाए नोट्स के आधार पर स्टूडेंट्स एक 'हेजिमोनिक' और 'होमोजीनियस' अर्थात पराश्रित और प्रतिलिप्यात्मक सामग्री लेकर पढ़ते हैं और खुद की सोच के हिसाब से विषय और इसके बारे में अतिरिक्त जानकारी लेने से गुरेज़ करने लगते हैं। जब ये बच्चे परीक्षा में विषय से संबंधित उत्तर लिखते हैं तो आधार स्रोत सबका वे नोट्स ही होते हैं जो सबके लिए एक जैसे हैं अर्थात 'यूनिफार्म' हैं। सबके उत्तर एक जैसे तो नहीं हो सकते, लेकिन एक जैसे जरूर प्रतीत होते हैं। उत्तर पुस्तिका देखने वाला तुरत समझ जाएगा कि सबने एक ही पद्धति से रिप्रोड्यूस किया है।

नोट्स का कल्चर

प्रिलिम्यालक नोट्स लेकर पढ़ने से विषय के प्रति समझ नहीं बढ़ाई जा सकती। किशोरावस्था में समझ का स्तर इतना ऊपर नहीं उठता कि वे बाजार से किताबें और गाइड्स की मदद के अलावा टेक्स्ट-बुक पढ़कर प्रीसाइजली वह सब लिख पाएंगे जो विषय और टॉपिक के प्रति समझ में इजाफा होने का द्योतक माना जाए। भाषा और एक्सप्रेशन अर्थात व्याख्यात्मक विधि दो बड़े टूल्स हैं जिनकी सहायता से कोई टीचर नोट्स बना तो लेगा, लेकिन विषय की समझ बढ़ाने के लिए उसे कोर्स के बाहर, सहायक सामग्री के रूप में उच्च स्तर का बहुत कुछ और पढ़ना होगा, जो अकसर नहीं किया जाता। नोट्स बनाने में समय और कागज की बर्बादी होती है। एक एमएससी टीचर, उक्त किताबों को लेकर अगर स्टूडेंट्स के साथ वास्तव में 'एंगेज' नहीं होता तो कैसे भी 'वर्ल्ड क्लास' नोट्स बना लें, समझ में इजाफा कभी न होगा। नोट्स बनाने वाली प्रोच सही नहीं है। जब स्टूडेंट के लिए पहली बार एक विषय इंट्रोड्यूस किया जाता है और धीरे-धीरे हायर स्टेटस की ओर इसमें उसे ले जाया जाता है तो क्लास और टीचर्स बदल जाते हैं। मेरा मानना है कि हायर सेकेंडरी लेवल पर एक विषय के प्रति स्टूडेंट्स की अवधारणा को फिर से बदलने की हमें जरूरत पड़ती है। जैसे कि, विज्ञान के इतिहास के प्रति उसमें रुचि जगाना। अगर यह हो जाए तो विज्ञान के क्रमिक विकास से एक छात्र परिचित होता रहेगा और एमएससी करने के उपरांत उसकी समझ 'नोट्स' बनाने वाले विद्यार्थी से बिल्कुल अलग तरह से विकसित हो चुकी होगी। राज्य वित्त पोषित कॉलेज और यूनिवर्सिटी टीचर्स में भी रिसर्च जर्नल्स को पढ़ने की प्रवृत्ति कम हुई है। इसीलिए देश के रिसर्च संस्थानों के प्रमुख और साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च पालिसी बनाने वाले नौकरशाह वैज्ञानिक जब भी राष्ट्रीय स्तर पर विमर्श करते हैं तब-तब यही बात कहते हैं उन्हें एंट्री-लेवल पर वैज्ञानिक भर्ती करने के लिए पर्याप्त संख्या में ऐसे युवा नहीं मिल रहे हैं जिनमें शोध के प्रति रुझान है। इंडियन नेशनल साइंस अकादमी, यूजीसी और इंडियन अकादमी ऑफ़ साइंसेज के अलावा आईसीएमआर, आईसीएआर, सीएसआईआर और इंडियन एसोसिएशन ऑफ़ कल्टीवेशन ऑफ़ साइंस (इन इंडिया) द्वारा आयोजित संगोष्ठियों में जो चिंताएं जाहिर की गयी हैं उनसे संबंधित दस्तावेज इन संस्थानों ने प्रकाशित किए हैं। अनेक दस्तावेज इनकी विभागीय वेबसाइट से फुल-टेक्स्ट, फ्री और पीडीएफ फॉर्मेट में डाउन लोड किए जा सकते हैं। इस आख्यान को और विस्तार देकर देखने से समझ में यही आता है की शैडो एजुकेशन से मौलिक चिंतन में ह्रास होता है जिसका दूरगामी दुष्परिणाम देश में वैज्ञानिक शोध और इंडस्ट्रियल प्रोग्रेस पर ही नहीं बल्कि अन्य अंतर-विद्यावर्ती गतिविधियों की गुणवत्ता पर भी पड़ता है।

स्कूल स्तर पर नोट्स के कल्चर को इसलिए कभी सपोर्ट नहीं करना चाहिए और छात्र को इनके अभिभावकों द्वारा ट्यूशन भी बड़े विचारपूर्वक दिलवानी चाहिए। पूरे देश के लिए एनसीईआरटी और, प्रांतीय स्तर पर एससीईआरटी, टीचर्स के लिए गर्मी की छुट्टियों में 'समर कोर्स' और 'रिफ्रेशर कोर्स' का आयोजन करती है जिसे बहुत से टीचर्स बहाना बनाकर अटेंड नहीं करते और ज्ञान का सही तरीके से लेन-देन करने के कार्य को निम्न स्तर पर ही चालू रखते हैं। मैंने एनसीईआरटी के विज्ञान और मैथमेटिक्स के कुछ प्रोफेसर्स, खासतौर से इसके पूर्व-निदेशक रहे प्रोफेसर कृष्ण कुमार, से कुछेक बार बात की थी और पाया कि वे दिलचस्प तरीके से विषय को इंट्रोड्यूस करते हैं और धीरे-धीरे विज्ञान के इतिहास और उन शख्सियतों से परिचित करवाते हैं जिन्होंने विषय के लिए नए ज्ञान का सृजन करने में अभूतपूर्व योगदान दिया। न केवल यही, बल्कि बदलते हुए युग के अनुसार हर फेज और महत्वपूर्ण वक्तों में, जैसे कि युद्ध, आर्थिक मंदी, प्राकृतिक आपदाओं और इंडस्ट्रियलाइजेशन से आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के स्तर तक पहुंचने के दौरान नवीनतम ज्ञान की परिभाषाएं और एप्लीकेशन्स कैसे बदलती रहीं और इनका प्रभाव ज्ञान को बढ़ाने वाले टीचर्स पर कैसा रहा, के बारे में भी बताते हैं। रोजमर्रा के जीवन से इस ज्ञान का ताल्लुक, प्रोफेशनल ड्यूटी करते समय विशिष्ट ज्ञान की एप्लीकेशन और इसे आगे बढ़ाते रहने के लिए अनुसंधान कार्य को जारी रखने की आवश्यकता के बारे में बताया जाना क्यों जरूरी है, यह भी समझाते हैं। यहां तक कि छात्रों को कुछ जानकारी फिल्म-एप्रिशियेशन (तात्विक-मूल्यांकन पद्धति) के बारे में होनी चाहिए ताकि आधुनिक समय के इस सशक्त माध्यम में एक कृति को देखने के बाद इसका मूल्यांकन करने की कुछ समझ युवाओं में पनपे और वे अच्छे, बुरे, मध्यम और उत्कृष्ट फिल्मकारों और घटिया फिल्मकारों की कृतियों के बारे में जान पाएं।

'इंटरैक्टिव' और 'प्रोग्रेसिव' शिक्षक

ज्ञान सृजन किस तरह की अनुसंधानिक प्रक्रिया है इसके बारे में जिक्र करना जरूरी होता है। इसलिए दर्रे पर काम करने वाले टीचर्स और वास्तव में 'इंटरैक्टिव' और 'प्रोग्रेसिव' ख्याल वाले शिक्षक में हमें भेद करना आना चाहिए। यह नहीं कर पाते, इसीलिए शिक्षा नीति में बारम्बार संशोधन करने के बावजूद अधिसंख्य छात्र या तो 'नॉन-परफॉर्मर' बने रहते हैं या साधारण या फिर, कमाई करने वाले और नोट्स बांटने वाले दुकानदार किस्म के शिक्षक।

इसी दलदल के बीच बहुत ही खुले दिमाग और अपने स्तर को लगातार ऊंचा उठाने वाले कुछ शिक्षक भी हम मिलते हैं। फिजिक्स विषय के एक टीचर को मैं जानता हूं जो हरियाणा में हायर सेकेंडरी स्तर के स्टूडेंट्स का शिक्षक है। यह ऐसा बेहतरीन और गुणी अध्यापक है जो अंतर-विद्यावर्ती अध्येता है, अपने छात्रों को निश्चित ही श्रेष्ठ ज्ञान देने के काबिल है। अनेक विषयों में काम करने वाले जिन विद्वानों और महान लोगों की जीवनियां मैंने पढ़ी हैं उस से मालूम हुआ है कि सही माने में एक टीचर कौन होता है और वह किस प्रकार से अपनी 'ब्रीड' में इजाफा करने के लिए छात्रों को नए तरीके से सोचने और परफॉर्म करने के लिए प्रेरित करता है। दुनिया में उक्त प्रकार की प्रवृत्ति वाले गुरुजनों के असंख्य उदाहरण मिलेंगे, लेकिन देखना यह है कि इनकी जीवनी सिर्फ महान व्यक्ति और वैज्ञानिक के जीवन की घटनाओं की 'लिस्टिंग' मात्र है या सूक्ष्म स्तर पर उसके चिंतन और कार्यविधि से भी हमें वाकिफियत करवाती हुई प्रेरणा भी बन पाती है। इस दूसरी प्रकार की जीवनी को ही पढ़ना श्रेयस्कर होता है।

भारतीय मूर्तिकला: परंपरा रूप, सरंचना और शैली

भारतीय इतिहास और संस्कृति का पूर्ण अध्ययन मूर्तिकला के बिना अधूरा है। ठीक उसी प्रकार भारत में रहने वाले प्राचीन लोगों, उनके मनोभाव और दार्शनिक तथा धार्मिक व्यवहारों को जाने बिना यहां की मूर्तिकला को समझना कठिन है। मानव सभ्यता के उषाकाल से मूर्तियां बननी शुरू हो गई थी, इन मूर्तियों को बनाने में उनका क्या उद्देश्य था बहुत निश्चित नहीं कहा जा सकता। पाषाणकालीन सभ्यता में पत्थर के औजार बनाने के साथ मानव कुछ अनगढ़ मूर्तियां भी बना देता था। इन प्रस्तर मूर्तियों के साथ वह हड्डियों की मूर्तियां भी बनाता था, जिनमें सबसे अधिक महिला मूर्तियां हैं। प्राचीनतम मूर्तियां मिट्टी की भी मिलती हैं या यूं कहें कि लकड़ी का भी बनाता था लेकिन अब ज्यादातर हड्डी वाले ही बचे हैं बाकी समय के साथ नष्ट हो गए। पूरे विश्व में मिलने वाली इन महिला मूर्तियों को यूरोपीय विद्वानों ने 'वीनस'(रोमन देवी) नाम दिया। जबकि भारतीय क्षेत्रों में इन्हें मातृदेवी कहा जाता है।

डॉ. अंकित जायसवाल
गोरखपुर

ये स्त्री मूर्तियां बिना बाल बांधे और बिना किसी आभूषण के हैं। उनका चेहरा भी ढंग से न बनाया जा सका है, पैर भी बस लाइन खींचकर उंगलियों को दिखा दिया गया है, लेकिन इनके प्रजनन अंगों स्तन, पेट, योनि और कूल्हे को काफी उभारकर दिखाया गया है। इनमें भी अधिकतर मूर्तियां गर्भावस्था में हैं, मूर्तियों को नग्न दिखाया गया है। इससे निष्कर्ष निकालना आसान है कि प्रारंभिक मानव उर्वरता और प्रजनन-शक्ति की पूजा शुरू किया फिर आगे चलकर उसे संगठित धर्मों ने अपना लिया। देश की प्रथम नगरीय सभ्यता हड़प्पा के स्थलों से अनेक मूर्तियां मिली हैं जिनमें कुछ धार्मिक/अनुष्ठानिक उपयोग की थीं तो कुछ दैनिक जीवन और मनोरंजन से जुड़ीं। महत्वपूर्ण है कि छठी सदी ई.पू. ऐतिहासिक काल की प्रारंभिक मूर्तिकला में हड़प्पा की मूर्तियों से काफी समानता मिलती है। हालांकि हड़प्पा सभ्यता के बाद मौर्यकाल तक पुरातात्विक खुदाई में प्रस्तर मूर्तियां नहीं मिलतीं लेकिन मौर्यकालीन मूर्तिकला के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि हमारे शिल्पी काष्ठ-कला में प्रवीण थे इसलिए उनका अवशेष नहीं मिलता। मौर्य सम्राट अशोक द्वारा जब प्रस्तर-कला को राजकीय संरक्षण दिया गया तब फिर से पत्थर से बनीं मूर्तियों की एक अनवरत श्रृंखला प्रारम्भ हुई।

हड़प्पा सभ्यता

हड़प्पा सभ्यता के बाद मूर्तिकला के साक्ष्य लोककला के अंतर्गत प्राप्त होता है जिनमें टेराकोटा की बनी असंख्य पुरुष और स्त्रियों की मूर्तियां मिली हैं। पत्थर की मूर्तियां पुन: लंबे अंतराल के बाद मौर्यकाल से मिलनी शुरू होती हैं जिनमें अशोक द्वारा बनवाए गए राजकीय पशु मूर्तियां विशेष हैं, इनका निर्माण एकाश्मक ऊंचे स्तम्भों के शीर्ष पर हुआ है। इनको बनाने में शिल्प-कौशल तो है ही साथ ही ये अत्यंत मौलिक दिखाई देते हैं। पत्थर से तराशे गए स्तंभों पर चमकीली पॉलिश धातु होने का भ्रम पैदा करती है। अशोक के स्तंभ शीर्षों में सबसे उत्कृष्ट सारनाथ का स्तंभ शीर्ष है जिसमें चार सिंह पीठ सटाए उकड़ू बैठे हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार ने इसे राष्ट्रीय चिन्ह का गौरव प्रदान किया है। मौर्यकालीन पटना, मथुरा और अन्य स्थानों से पत्थरों की तरासी गई अनेक विशालकाय मानवीय आकृतियां भी प्रमुख हैं जिनको यक्ष-यक्षी के नाम से जाना जाता है। ये यक्ष-यक्षियां लोकधर्म का प्रतिनिधित्व करतें हैं जिनकी उपासना भारतीय उपमहाद्वीप में आज भी प्रचलित हैं। परखम से प्राप्त यक्ष प्रतिमा (पहली/दूसरी सदी ई.पू.), लोहानीपुर से प्राप्त नग्न यक्ष और दीदारगंज से प्राप्त यक्षी, बेसनगर और पवैया से प्राप्त समृद्धि और संपत्ति के से जुड़े यक्ष देवता इनमें प्रमुख हैं। परखम(मथुरा) से प्राप्त यक्ष प्रतिमा पर लेख मिलता है जिसके आधार पर इसे मणिभद्र यक्ष नाम दिया गया।

टेराकोटा की बनी मूर्तियां।

जैन एवं बौद्ध धर्म

जैन एवं बौद्ध धर्म में हुए विभाजन में भी कुछ हद तक इस नई भक्तिमय धारा का हाथ था जिसमें अपने-अपने आराध्य की प्रतिमा पूजन सबसे बड़ा लक्षण है। हालांकि इन प्रारम्भिक मूर्तियों में बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्तियां अधिकतम हैं क्योंकि तत्कालीन कला केन्द्र के रूप में विख्यात मथुरा और गांधार पर उन कुषाण शासकों का प्रभुत्व था जो प्राय: बौद्ध धर्मी थे लेकिन ये शासक धार्मिक रूप से कट्टर नहीं थे क्योंकि इनके राजकीय सिक्कों पर बुद्ध के साथ शिव, उमा, कार्तिकेय के साथ यूनानी और ईरानी देवी-देवताओं की मूर्तियां भी अंकित हैं। जहां मौर्य-शुंग कालीन भरहुत, सांची और बोधगया में बुद्ध की कोई मूर्ति नहीं मिलती वहीं कुषाणकालीन मथुरा में बुद्ध प्रतीक और मूर्तियां दोनों का सह-अस्तित्व दिखाई पड़ता है।

इन प्रारंभिक मूर्तियों में बुद्ध और जैन मूर्तियों में सबसे अधिक समानता देखने को मिलती है। कंकाली टीला मथुरा से प्राप्त जैन मूर्तियों में अगर श्रीवत्स चिन्ह, दिगम्बर रूप और उनके साथ मिलने वाली वस्तुओं पर पर ध्यान न दिया जाए तो अंगों की समानता पर जैन मूर्तियों को बौद्ध और बौद्ध मूर्तियों को जैन कहने का भ्रम हो जाएगा। प्रारंभिक जैन मूर्तियां अयागपट्टों पर मिलती हैं जो ध्यान की अवस्था में हैं। प्राचीनतम जैन स्तूप भी मथुरा में ही मिलते हैं, जिनका वास्तुशिल्प लगभग वही था जो बौद्ध स्तूपों का था। जैन मूर्तियां खड़ी और बैठी दोनों मुद्राओं में बनाई गईं हैं, जिनमें खड़ी मूर्तियों का नग्न 'कायोत्सर्ग' मुद्रा प्रमुख विशेषता है। बैठी हुई मूर्तियां पद्मासन में अपने दोनों हथेलियां एक दूसरे के ऊपर रखे हुए हैं। महत्वपूर्ण है कि आगे चलकर ऐसी मुद्रा में बुद्ध मूर्तियां भी बनने लगीं जिससे भ्रम की स्थिति बन जाती है। जैन मूर्तियों की कुछ अन्य विशेषताएं हैं :- अजानबाहु स्वरूप, साथ मे यक्ष-यक्षिणियों की आकृतियां, उषणीष का अभाव, तीर्थंकर के हाथ, पैर और वक्षस्थल पर जैन प्रतीकों के चिन्ह, कंधे गोलाकार न होकर चौड़े आदि।

बौद्ध मूर्तियां

बौद्ध मूर्तियों के लेखों पर ध्यान दिया जाए तो प्रारंभिक बौद्ध मूर्तियां जो मथुरा से मिली हैं, उन पर बुद्ध न लिखकर बोधिसत्व लिखा मिला हैं। शायद इसलिए कि शुरुआत में बुद्ध मूर्तियां बनाने की मनाही थी, केवल प्रतीकों द्वारा पूजा करने का विधान था। कटरा से प्राप्त बोधिवृक्ष के नीचे बैठी बुद्ध मूर्ति और कनिष्क के तीसरे शासनकाल (81 ई0) की मूर्ति जिसे भिक्षु बल ने स्थापित करवाया था, उसपर अंकित लेख में बोधिसत्व कहा गया है। मथुरा-कला के अंतर्गत बनने वाली प्रारंभिक बौद्ध मूर्तियों के सिर मुंडित हैं अथवा उष्णीष पर शंख या कौड़ी जैसी बालों की घुमावदार संरचना है। 'उष्णीष', बुद्ध मूर्तियों के संदर्भ में ध्यान देने वाली बात है कि यह कोई पगड़ी या साफा नहीं होता बल्कि यह मस्तक के ऊपर उभरी हुई गोलाई है जो उनके शरीर का नैसर्गिक भाग है। माथे पर उर्णा या छोटा गड्ढा जो दिखने में शिव की तीसरी आंख का भ्रम पैदा करती है। बुद्ध का विशाल वक्षस्थल और साधारणत: उनका बांया कन्धा वस्त्र से ढका हुआ, प्रभामण्डल जैसी कई विशेषताएं देखने को मिलती हैं।

नवपाषाण और ताम्रपाषाणिक

नवपाषाण और ताम्रपाषाणिक ग्रामीण बस्तियों और हड़प्पा सभ्यता के लोगों ने जो खिलौने, मिट्टी के बर्तनों पर किए गए चित्रकारियों, मूर्तियां और माप-बांट बनाए तथा उनकी धर्म-उपासना और शव-अंत्येष्टि व्यवहार जिनमें शवों को दफनाना, दाह-संस्कार के बाद अस्थियों को कलश में रखकर गाड़ने की प्रथा आदि थी इन सबकी छाप आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं। उदाहरण के तौर पर मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक महिला कांस्य मूर्ति में उसके बाएं बाजू को चूड़ियों से भर दिया गया है, आज भी राजस्थान और बलूचिस्तान के ग्रामीण औरतें को इस तरह चूड़ियों को पहनना आम है। प्रकृति और स्त्री मूर्तियों के रूप में मातृदेवी की पूजा हड़प्पा काल से होते हुए आज भी जारी है। हड़प्पा के पशुपति रूप वाले पुरुष देवता में शिव का आद्य रूप देखा जा सकता है। इस सींगों वाले देवता के अगल-बगल हिरन होने और योगासन मुद्रा में बैठने के कारण इसमें पूर्व बुद्धों की भी कल्पना की जा सकती है। मोहनजोदड़ो से ही प्राप्त 'पुरोहित-राजा' की आधी बंद आंखें और बाएं कंधे पर त्रिफुलिया डिजाइन वाले वस्त्र की समानता ईस्वी सदी में मिलने वाली बुद्ध और 'कायोत्सर्ग' वाली जैन मूर्तियों में देखी जा सकती है। हालांकि, हड़प्पावासी इन्हें क्या मानते और समझते थे यह तब तक निश्चित नहीं किया जा सकता जबतक कि हड़प्पाई लिपि को पढ़ने में सफलता न मिल जाए। हड़प्पा सभ्यता में खाली अथवा वृक्ष को घेरकर बनाए गए स्थान शायद पूजास्थल थे जिनकी परंपरा ऐतिहासिक काल से होते हुए आज भी वर्तमान है।

मोहनजोदड़ो से प्राप्त महिला की कांस्य मूर्ति।

मौर्यकाल

मौर्यकाल के ठीक बाद (200 ई.पू. से 300 ई.पू. के बीच) भारतीय धार्मिक सिद्धान्तों और व्यवहारों में पूर्वकाल की निरंतरता के साथ एक नए परिवर्तन का समावेश होता है जो बौद्ध और जैन धर्म में समाहित आस्था के साथ ही प्रारंभिक ब्राह्मण-हिंदू धर्म के ऐसे स्वरूप को सामने लाता है जो पौराणिक साहित्य और वर्तमान हिंदू धर्म का मूल है। इससे धर्म-गान की नई परंपरा और साथ ही धार्मिक मिथकों और किवंदतियों का विकास तथा उपासना की नई विधियां साथ साथ ही विकसित होती चली गईं। नास्तिक मत कहे जाने वाले जैन और बौद्ध धर्म भी इससे अछूते नहीं रहे, इन धर्मों में उपस्थित प्रतीक-पूजन, मूर्ति-पूजा में बदल गया। जबकि मौर्यकाल में बुद्ध की पूजा केवल उनके प्रतीक चिन्हों से ही रही थी क्योंकि शुरुआती स्तूपों पर बुद्ध की मूर्तियां नदारद हैं।

प्राचीन कला विशेषज्ञ आनंद के.कुमारस्वामी ने काफी प्रभावशाली ढंग से साबित किया है कि भक्ति की धारा जिससे आज सभी प्रभुत्वशाली भारतीय धार्मिक संप्रदाय जाने जाते हैं इनका स्वभाविक स्रोत यही यक्ष-यक्षी, नाग-नागी और मातृदेवीयों की भक्तिपूर्ण उपासना रही है जो भारतीय जनमानस में पाषाणकाल ही चली आ रही थी। इन्होंने यह भी तर्क दिया कि यक्ष-यक्षियों की उपासना में प्रारंभ से ही मंदिर पूजा और उपासना पद्धति का विकास लौकिक स्तर पर हो चुका था। यक्षों की पूजा प्रजनन क्षमता, वृद्धि, वृक्ष, वन, जल, और एकांत से जुड़ी हैं। ब्राह्मण,बौद्ध और जैन ग्रंथों में यक्ष और यक्षी दानवी और डराने वाले चरित्रों के रूप में दिखलाए गए हैं जो इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि बाद में प्रभुत्वशाली धार्मिक परंपराओं में इनको समाविष्ट कर इनके अस्तित्व को लगभग समाप्त कर दिया गया। ये यक्षी प्रतिमाएं ही हैं जिन्हें "शालभंजिका" के नाम से जाना जाता है। प्रारंभिक बौद्ध स्तूप भी इन यक्ष-यक्षी, नाग-नागी और मातृदेवी की मूर्तियों से भरे पड़े हैं जिन्हें प्राय: बौद्ध परिवेश में दिखाया गया है। इन शिल्पों द्वारा समकालीन समाज और संस्कृति का दर्शन होता है। इन्हीं यक्ष-यक्षीयों और लोकपरंपरा के देव मूर्तियों से प्रेरणा लेकर लगभग पहली/दूसरी सदी ई.पू.से मथुरा एवं गांधार कला के अंतर्गत पहली बार बुद्ध और ब्राह्मण-हिंदू एवं जैन मूर्तियां प्रचुर मात्रा में बनने लगीं।

गांधार-कला

गांधार-कला के अंतर्गत बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियां भारी मात्रा में बनीं लेकिन इस कला के अंतर्गत ब्राह्मण-हिंदू और जैन मूर्तियां प्राय: नहीं मिलतीं। गांधार-कला की प्राचीनतम मानी जाने वाली बुद्ध मूर्ति कनिष्क चैत्य की अस्थिमंजूषा पर बनी है,जिसमें बुद्ध पद्मासन में बैठें हैं जबकि अगल-बगल ब्रह्मा तथा इंद्र की मूर्तियां बनीं हैं, ध्यान योग्य है कि ब्रह्मा और इंद्र का उल्लेख बौद्ध धार्मिक साहित्य में भी आता है। अफगानिस्तान के बामियान में मिले स्वर्णनिर्मित मंजूषा पर बुद्ध की मूर्ति मिली है उसकी तिथि कुछ विद्वान पहली सदी ई. पू. निश्चित करते हैं जो बुद्ध की प्राचीनतम मूर्तियों में से एक है। तपस्यारत बुद्ध की मूर्ति जिसमें उपवास के कारण उनका शरीर अत्यंत क्षीण हो गया है, गन्धार कला के सर्वोत्तम नमूनों में से एक है।

मूर्तिकला में भारतीय परंपरा के साथ यूनानी-रोमन

मौर्योत्तर-कुषाणकाल से भारी मात्रा में शुरु होने वाली इस मूर्तिकला में भारतीय परंपरा के साथ यूनानी-रोमन विशेषताओं को भी ग्रहण किया गया जिसका अंतिम प्रतिफल था कला का क्लासिकल युग, यह 300 से 600 ई. के बीच चला। इस युग में कला एवं साहित्य दोनों ही सौंदर्य के समानांतर आदर्शों की स्थापना करते हैं और अध्यात्म तथा इंद्रियनिष्ठ सुख के बीच एक अद्वितीय संतुलन बनाते हुए दिखलाई पड़ते हैं। गुप्त-वाकाटक युगीन कला में अजन्ता के चित्र और मूर्तियां सबसे मनोहर झांकी प्रस्तुत करती हैं। चूंकि अधिकतर गुप्त सम्राट वैष्णव धर्मी थे इसलिए इस समय विष्णु की प्रतिमाओं में सबसे अधिक विविधता देखने को मिलती है, मूर्तिकला के आधार पर सही मायने में विष्णु के दशावतार इसी समय पूर्ण रूप से दिखाई पड़ते हैं। गुप्तयुगीन अजन्ता के बौद्ध चित्र और सारनाथ की बौद्ध मूर्तियां बेहद दर्शनीय हैं। इस युग को चहुमुखी विकास और समृद्धि का काल मानते हुए अनेक विद्वानों ने इसे स्वर्णयुग कहा है जोकि असल मायने में स्थापत्य और मूर्तिकला के साथ साहित्य, खगोलशास्त्र, गणित और चिकित्सा के अभूतपूर्व विकास में दिखाई देता है। हालांकि इन शताब्दियों की सांस्कृतिक सृजनात्मकता प्राय: कुलीन नगरीय समुदाय से सम्बंधित थी। संस्कृत साहित्य और पत्थरों पर शिल्पांकित प्रतिमाशास्त्र का चरमोन्नति इस युग की विशेष उपलब्धि है जो भारतीय कला-विरासत की अप्रतिम पहचान है।

व्यंग्य

बोर्ड परीक्षा का हौव्वा

डॉ. आकांक्षा दीक्षित
लखनऊ

दुनिया तेजी से बदल रही है और इस तेजी ने बहुत चीजें आसान कर दी है। मौजूदा दौर में ऐसे ऐप तक मौजूद है जो खत्म होने पर टूथपेस्ट से लेकर आधा लीटर दूध तक दस मिनट में घर पर पहुंचा देते है। इस तेजी ने एक बहुत बड़ा नुकसान भी किया है। उत्साह और इत्मीनान दोनों ही के पर कतर कर रख दिए है। इससे ये ना समझा जाए कि सुविधाओं से किसी को आपत्ति है किन्तु कुछ यादगार स्मृतियां बनाने का अवसर अवश्य छिन गया है। बोर्ड का रिजल्ट ही ले ले। एक समय था कि बोर्ड परीक्षा और उसका का परीक्षाफल पूरे मोहल्ले की चर्चा का केन्द्रबिंदु होता था। हाईस्कूल और इंटरमीडिएट का कोई छात्र-छात्रा गलती से भी मटरगश्ती करता या करती दिख भर जाता था तो मुहल्ले के चाचा, ताऊ, बुआ, मौसी हाथ के हाथ लम्बा-चौड़ा लेक्चर पिला देते थे। उनका सबसे प्रिय डायलॉग यही होता था कि, 'मुहल्ले की नाक ना कटवा देना अबकिल बोर्ड का इम्तिहान है और इनकी मौज ही खत्म नहीं हो रही।' यहीं नहीं कुछ प्रोमैक्स क्वालिटी के ये पड़ोसी कम रिश्तेदार, घरवालों को भी भड़का आते थे। एएलवर्मा जिनका पूरा नाम अम्बिका लाल वर्मा था, पूरे मोहल्ले के बच्चों में आग लगाऊ वर्मा के नाम से प्रसिद्ध थे। उनकी निगाहेंजद में आने वाला प्राणी बिना कुटे यदि रह जाए तो बात उनका प्रतिष्ठा पर आ जाती थी। किसी को किसी के साथ घूमते भर देख ले दोनों घरों में बराबर मात्रा में आग लगा आते थे। उनका अच्छा-खासा खौफ था जिसका कारण ये था कि वे ना केवल आग उगलने में बल्कि मनगढ़ंत स्क्रिप्ट तैयार करने में भी दक्ष थे। लड़का हो या लड़की सार्वजनिक रुप से एक-दूसरे से बात तक नहीं कर सकते थे क्योंकि वे तत्काल स्वरचित प्रेम-कहानी वायरल कर देते थे। वो तो एक बार अरोड़ाइन ने उनकी क्लास लगा डाली तो जाकर थोड़ा काबू में आए थे। हुआ ये था कि बोर्ड परीक्षा के कुछ दिन पहले सीमा अरोड़ा और सोनू चौहान एक ही समय पर मुहल्ले की दुकान से एक खास इंक लेने पहुंचे थे। संयोगवश एक ही शीशी बची थी सो चौहान जी ने जेन्टलमैन स्पिरिट दिखाते हुए लेडीज फर्स्ट का नारा लगाया और सीमा जी को इंक सौंप दी। सीमा ने भी आभार माना और सोनू के दोनों पेन तुरंत ड्रापर खरीदकर इंक से भर दिए। ये घटना वर्मा जी ने दूर से देखी और बस फिर क्या था तुरंत कहानी तैयार कर ली। इस बार उनसे चूक

हो गई कि लिए पहले अरोड़ा निवास पहुंच गए। सीमा पूरी बात पहले ही अपनी मम्मी को बता चुकी थी। अरोड़ाइन ने ना केवल आग लगाऊ वर्मा की योजना में आग लगाई बल्कि उनके खानदान की आभासी और वास्तविक बीस कहानियां गिना दी। साथ ही धमकी भरी चेतावनी भी दी कि 'हमारी बिटिया से दूर रहो, हम अभी जिन्दा है।' पहली बार मुहल्ले के बच्चों ने बिना दीवाली पटाखे बजाये। ये सब तो आम बातें थी ही लडकियां तब भी लड़को से अधिक नंबर लाती थी। पर आजकल तो आफत ही मची हुई है। निन्यानबे प्रतिशत से कम की तो कोई बात ही नहीं करता। एक समय था कि साठ प्रतिशत आने पर खानदान भर में मिठाइयां बंट जाती थी। सत्येंद्र को दुखी देखकर जब उसके मित्र गुड्डू ने पूछा कि, 'क्या हुआ?' तो उसने बताया कि, 'चाचा बता रहे थे कि कि हाईस्कूल पास होने पर लड़के की नौकरी लग जाया करती थी, देखुवा आकर रिश्ता तक तय कर जाया करते थे। यहां तो नौकरी दूर, बियाह होना ही कठिन जान पड़ता है। तबसे अफसोस हो रहा है कि गलत समय पर पैदा हो गए। यार कितना बढ़िया समय रहा होगा जब कंदराओं में रहते थे, कंदमूल खाते थे और झिंगालाला हुर्र-हुर्र में जिंदगी मस्त कट जाया करती थी। पता नहीं कौन इत्मीनान का दुश्मन पैदा हो गया जिसको सभ्य बनने की पड़ी थी। बना तो बना ये बोर्ड का टंटा और खड़ा कर गया। ऐसी जिंदगी से तो मर जाना ठीक है।' इस पर दोस्त ने जो बात कही उसने तो दिल, जिगर, फेफड़े सब में छेद कर दिया। गुड्डू ने कहा, 'भाई! सोचे तो हम भी यही थे लेकिन मरने पर दूसरा जन्म मिलेगा और पढ़ाई नर्सरी से करनी पड़ेगी। ये सोचते ही मरना कैंसिल कर दिया। जैसे-तैसे तो हाईस्कूल में पहुंचे है रिस्क कौन ले।'

केवल यही नहीं बोर्ड की परीक्षा में लड़कियों के नंबर अधिक आना भी कुछ लड़को के पल्ले कभी नहीं पड़ता। गोपाल यानी गप्पू अपने मित्र मंटू से बता रहे थे कि, 'यार दीदी घर के काम भी करती है। स्कूल भी जाती है। उसकी कापियां एकदम चकाचक कवर चढ़ी नई सी लगती है। यहां क्लासवर्क की और होमवर्क की कापी अलग-अलग बना पाना ही बवाल है। हाईस्कूल में नब्बे प्रतिशत लाई थी।' मंटू बोले, 'सही कह रहे हो यार, इतने में तो दो लड़के पास हो जाए।' बात वैसे विचारणीय है। शायद लड़कियों के पास अवसर कम होते है इसलिए वे जीजान लगा देती है। दुनिया का चलन ही अजीब है। कुछ लोग पंचानबे प्रतिशत पाकर भी दुखी है और कुछ को पचास-पचपन भी नहीं जुहा रहे। वो तो अब पेपर में रिजल्ट नहीं आता अन्यथा पहले सार्वजनिक बेज्जत्ती होती थी फिर कुटम्मस।

मोबाइल ने आग लगाऊ लोगों का रोजगार छीन लिया है। बड़ी मुश्किल से रिजल्ट का पेपर लेकर आने वाले का भाव भी खत्म हो गया है। जो भी हो बोर्ड परीक्षा खतरनाक तब भी मानी जाती थी और अब भी मानी जाती है। जो गंभीर नहीं भी होता उसे हर दूसरा आदमी पूछ-पूछ कर और बता-बताकर चिंतित कर ही देता है कि अबकी बोर्ड हैं जैसे बोर्ड की परीक्षा ना हो गई जीने-मरने का सवाल हो गया।

पढ़ाई करनी चाहिए, मन लगाकर करनी चाहिए लेकिन अगर कुछ मन मुताबिक परिणाम ना निकले तो भी दुखी होने की बजाए जो कमी रह गई उसको दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। बिट्टो बुआ का कहना है कि, 'एक परीक्षा ही तो है जीवन तो अनगिनत परीक्षाएं लेता है। लड़ने से पहले हार मानना गलत है। नंबर कम-ज्यादा आना अलग बात है। सफल होने पर कोई नंबर नहीं पूछता और सबसे बड़ी बात ये है कि हर साल तो इम्तिहान आता है कोई कुंभ का मेला थोड़ी है कि बारह बरस में आए। पास हो गए तो ठीक ना हुए तो फिर दे देना इम्तिहान। हम खुद तीन बार दिए हैं। पास हो गए ना आखिर।' देखा जाए तो बात सही भी है।

कविता

गांव बोला शहर से

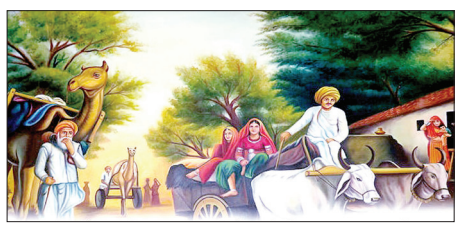

गांव बोला शहर से-
मतकर खुद पर गुरूर,
इतना न हो तू मगरूर,
मेरे बच्चों को करके मुझसे दूर।
शहर जाने का उन पर ऐसा चढ़ा
है फितूर।
जो मुझे कतई नहीं है मंजूर
पर मैं तो हूं मजबूर।

इक दिन तो गांव यूं ही वीरान हो
जाएगा।
कोई लौटकर यहां नहीं आएगा।
अपनी संस्कृति को भी भूल
जाएगा।
उन्हें फिर यहां का परिवेश नहीं
भाएगा।

शहर बोला- मैंने कहां उन्हें
बुलाया?
हर कोई तो खुद ही मेरे पास चला
आया।
मैंने उनकी सभी जरूरतें की हैं पूरी
जो रही गांव में अधूरी।
मेरी चकाचौंध ने ही तो
तेरे बच्चों को लुभाया है।
यहां का भागदौड़ भरा जीवन
उन्हें रास कहां आया है?

पर तू यूं न घबरा।
तेरे बच्चों को यहां चैन नहीं आएगा।
जब-जब उनका मन बैचेन हो
जायेगा
तो तेरा प्रेम उन्हें तेरे पास ही
लाएगा।

कमला बिष्ट "कमल"
अल्मोड़ा

वे औरतें

इन दिनों कुछ अपरिचित औरतें
मुझे बहुत याद आने लगी हैं
जैसे कि वह जिसने ट्रेन में मेरे साथ
अपना खाना बांटकर खाया था
वह जिसने चिलचिलाती धूप में
मेरी प्यास महसूस कर
अपना पानी की बोतल मुझे थमा
दी थी
वह जिसने बेटे को गोद में लेकर
बस की अपनी एक सीट मुझे दे
दी थी
वह जिसने पहाड़ से फिसलते वक्त
सहारा देकर मुझे गिरने से बचा
लिया था
वह जिसने देर शाम बर्फीली
वादियों में
अपना छोटा-सा होटल खोलकर
मिर्च की तीखी चटनी के साथ
मुझे गर्म-गर्म मोमो खिलाया था
यहां तक कि वह एक औरत भी
जो मेट्रो की भीड़-भाड़ में एक बार
मुझे एकटक घूरते देखकर
मुस्कुराई थी
और मैं बुरी तरह झेंप गया था
ऐसी और भी औरतें हैं
मेरे जीवन में जिनकी कोई बड़ी
भूमिका नहीं
मगर वे इन दिनों याद आती हैं
शायद यह ढलती उम्र में
जीवन के प्रति लगातार कम हो रहे
भरोसे का असर है
जो बात तब कहना
मुनासिब नहीं लगा था मुझे
मुझे लगता है कि अब कह देना
चाहिए
सुन रही हो न तुम सब -
मुझे तुम सबसे बहुत प्यार है।

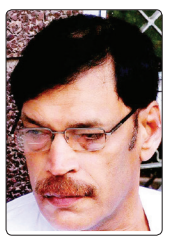

ध्रुव गुप्त
सेवानिवृत्त आईपीएस

कौन हो भाई

कौन हो भाई
इस एकांत में अपने आप से ही
क्यों कर रहे हो लड़ाई
कभी कवि था महाशय
जो छोड़ चुका है कविताई
क्या कहूं इस समय
मैं कौन हूं? बस मौन हूं
भूतपूर्व कवि का मौन हो जाना
बहुत खतरनाक होता है बंधू
आप तो मेरे लिए बहुत उपयोगी
हैं
मैं राजनीति का कीड़ा हूं
किसी की दवा किसी की पीड़ा हूं
आप मेरे साथ चलें
भावना भले खो चुके हैं
पर अपार संभावना निहित हैं
आप में
उसे व्यर्थ न जाने दें
कविता छोड़ चूका भूतपूर्व कवि
अभूतपूर्व होगा राजनीति की
दुनिया में
आपके मौन को कविताई की
भाषा
तो नहीं दे सकता
पर राजनीती के नाना प्रकार के
भाव ,भाषा और बोली दूंगा
जिसके तमाम अर्थ होते हैं।

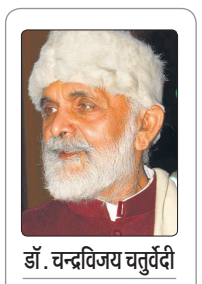

डॉ. चन्द्रविजय चतुर्वेदी
प्रयागराज

कहानी

भिखारी की बेटी

अक्सर में शाम को अपने घर के बाहर सड़क किनारे परचून की दुकान पर खड़ा हो जाता था। रोज ही एक आंखों से माजूर भिखारी एक दस साल की लड़की के कांधे पर हाथ धरे भीख मांगता वहां से गुजरता वह कभी-कभी सामने की ओर सड़क किनारे थोड़ी देर के लिए बैठ भी जाया करता और फिर कुछ देर के बाद वहां से चला जाता। मैं यह मंजर लगभग हर रोज ही देखता। एक दिन जब वह बैठने के लिए झुक रहा था तब उसके साथ रहती छोटी लड़की ने हल्की हंसी के साथ कुछ कहा जिसे सुनकर भिखारी काफी जोर से खिलखिला उठा और फिर कुछ कहते हुए बैठ गया। यह माजरा देखकर मैं सोचने पर मजबूर हो गया कि ऐसी कौन सी खुशी की बात थी जिसे सुनकर गिड़गिड़ा कर भीख मांगने वाले से बिना हंसे रहा नहीं गया। कहीं यह हंसी व्यंगात्मक तो नहीं?

राशिद हुसैन
इंजीनियर, मुरादाबाद

समीना ओ समीना भिखारी अपनी दस साल की मासूम बेटी को आवाज देते हुए बड़बड़ाया शाम हो गई है। इसका अभी तक पता नहीं हर वक्त जाने कहां-कहां खेलती फिरती है? भिखारी हाथ में डंडा लेकर चारपाई से उठा और झोली ढूंढने की कोशिश करने लगा तब ही उलझे हुए बाल जिनमें छोटी-छोटी दो चोटियां बंधी थी मैला सिलवटे पड़ा शलवार और बड़ा सा कुर्ता पहने दौड़ती हुई समीना आ गई। आने के बाद समीना घिसी हुई रबड़ की दो पट्टियों वाली चप्पल चारपाई के नीचे से निकाल कर पहन ली। दिन ढल चुका था, हल्की ठंड होने लगी थी। ठंड से बचने के लिए उसने एक मैली से शॉल जो कई जगह से फटी थी, सर से इस तरह से ओढ़े की उसका आधा शरीर ढक गया। बेटी के आने की आहट से अंधा भिखारी नाराज होते हुए फिर बड़बड़ाया तुझे पता नहीं है शाम हो गई है। समीना ने खूंटी पर टंगी झोली उतारी और भिखारी के कंधे पर डाल दी। फिर उसकी लाठी पकड़ आगे-आगे चलने लगी। भिखारी अल्लाह के नाम पर मोहताज को देते चलो बाबा कहता आगे बढ़ने लगा। कुछ दूर निकलने के बाद तू चुप क्यों है बेटी?

कुछ नहीं अब्बा जी समीना ने हल्के से कहा, लगता है तुझे गुस्सा आ गया, मैं तो बस यूं ही कह रहा था। एक तो बेटी तेरे सिवा मेरा इस दुनिया में है ही कौन? इसलिए मुझे हर वक्त तेरी फिक्र लगी रहती है और अब रात और सुबह के खाने का इंतजाम भी तो करना है। तुझे पता है बेटी मेरे सीने में कई दिनों से बड़ा दर्द है। मैं सोच रहा था कुछ पैसे इकट्ठे हो जाएं तो किसी अच्छे डॉक्टर को दिखा के दवाई ले लूं। दर्द की बात सुनकर समीना से रह नहीं गया। वो बोल उठी अब्बा हम कल ही डॉक्टर को दिखाएंगे। मैं जो पैसे गुड़िया खरीदने के लिए जोड़ रही हूं, उन्हीं पैसों से आपकी दवाई लेंगे।

समीना की बात सुनकर भिखारी का दिल भर आया और भर्राई आवाज से बोला नहीं-नहीं बेटी इतना दर्द नहीं है, जो सहन न कर पाऊं। कुछ दिन मैं पैसे जमाकर दवाई ले लेंगे।

कुछ देर की खामोशी के बाद भिखारी ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा अच्छा समीना तू आजकल कई दिनों से कहां खेलने चली जाती है? जो मेरे आवाज देने के बाद भी देर से आती है। जब समीना ने अपने अब्बा को साधारण होते हुए देखा तो वो चहकते हुए बोली सीमा आंटी के घर चली जाती हूं। वहां क्यों? वो मालदार लोग हैं बेटी, वहां मत जाया करो। भिखारी ने नसीहत करते हुए कहा,

फिर कुछ देर के लिए दोनों खामोश हो गए। अच्छा चल बता वहां तू क्यों जाती है? अब्बा उनकी लड़की मेरे बराबर की है न उसके पापा इसी हफ्ते दुबई से आए हैं। वो उसके लिए एक बहुत खूबसूरत सेलो वाली गुड़िया लाए हैं, जो हंसती भी है और रोती भी है। मैं उसके साथ उस गुड़िया से खेलती रहती हूं। सेलो वाली गुड़िया ये कैसी होती है? भिखारी ने अचरज से पूछा, समीना फिर जल्दी-जल्दी गुड़िया के बारे में बताती चली गई और जब रुकी तो अरमान भारी नजरों से अपने अब्बा को देखते हुए ऐसी ही गुड़िया खरीदने की ख्वाहिश भी जाहिर कर दी। बेटी की फरमाइश सुनकर भिखारी ने ठंडी सांस ली और कहा बेटी वो तो बहुत महंगी होगी हम कैसे खरीदेंगे? यह सुनकर समीना फिर बोली तीन सौ रुपये की है। यहां बाजार में भी मिल जाएगी सीमा आंटी बात रही थीं। ये तो बहुत पैसे हैं कैसे इकट्ठा होंगे। भिखारी ने असमर्थता जताते हुए कहा, तभी समीना कह उठी अब्बा मेरी मिट्टी की गुल्लक मैं बहुत पैसे हैं, उसे तोड़कर देखेंगे जितने कम होंगे आप दे देना। यह सुनकर भिखारी अपनी बेबसी पर लजा गया और सोचने लगा काश वह अपनी बच्ची को वो गुड़िया दिला पाता। वो सोचने लगा उसको क्या मालूम उसकी गुल्लक मैं कितने पैसे हैं? और फिर जितना मिलता है, उससे तो दो वक्त की रूखी-सूखी रोटी का ही इंतजाम हो पाता है। अल्लाह के नाम पर भीख मांगने वाले किसी से खिलोने की ख्वाहिश भी तो जाहिर नहीं कर सकते और न ही झूठ बोलकर भीख मांग सकता। ये सब बातें वो काफी देर तक सोचता रहा। कुछ ही देर में उसके चेहरे पर चमक लौटी और कहा ठीक है हम थोड़े-थोड़े पैसे बचाकर कुछ दिनों में गुड़िया ज़रूर खरीद लेंगे। यह बात सुनकर समीना खुश हो गई। कई हफ्तों की जद्दोजहद के बाद वो दिन आ गया जब भिखारी ने कुछ रुपयों का इंतजाम कर लिया, लेकिन अभी भी कई रुपये की कमी थी, जो पैसे पूरे करने के लिए समीना ने अपनी दो साल पुरानी गुल्लक तोड़ दी। गुड़िया खरीद कर समीना बहुत खुश थी,लेकिन भिखारी की खुशी के साथ उसके सीने का दर्द भी बढ़ता जा रहा था। किसी अनहोनी के डर से वह बेचैन था फिर भी वह खुश था।

समीना अब हर वक्त गुड़िया से खेलती रहती। रात को भी वह उसे अपने पास रखकर सोती। समीना को उस बेजान खिलौने से इतना प्यार हो गया था कि वह उसका अपने से ज्यादा ख्याल रखती जिसको पाने की तमन्ना में समीना दिन रात लगी रहती। वो चीज पाने के बाद उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था, लेकिन अफसोस वो खुशी आज काफूर हो गई थी। समीना की आंखों से बहते आंसू किसी के भी दिल को पिघलाने के लिए काफी थे। अंधे भिखारी के कानों में सुनाई पड़ रही समीना की सिसकियां भिखारी के दिल पर नस्तर की तरह चुभ रही थीं और वह बेबस जख्मी परिंदे की मानिंद तड़प रहा था। क्योंकि आज भिखारी की कोठरी की कच्ची दीवार में बने ताख से अचानक गुड़िया गिरकर टूट गई। आज समीना बहुत रोई थी। मैं आज भी अक्सर वहीं सड़क किनारे खड़ा हो जाता हूं, लेकिन उसके बाद वह भिखारी कभी दिखाई नहीं दिया।

शब्द-चर्चा

जानपद-जन के भाषा-ज्ञान पर विचार करें। हमारे पास एक ही प्रयोग है और हम उसी से अपनी धोती धो लेते हैं किन्तु क्या हम बतला सकेंगे कि धोती धोने, धोती पछीटने और धोती फलफलाने में क्या अन्तर है?

हम तो बस सो जाते हैं किन्तु क्या हम बतला सकेंगे कि नींद, औंघ और घंघेला में क्या अन्तर है?

वर्षा होती है किन्तु जानपद-जन के पास बूंदाबांदी से लेकर पनियांढार तक कितने शब्द वर्षा के भेद को समझाने के लिए मौजूद हैं, रिमझिम, पिछौरिया-निचोर, क्रिया भरौआ, मेंड़तोड़ आदि।

हम यह तो कह देते हैं कि हवा चल रही है किन्तु जानपदजन कहता है कि यह पुरबैया है, पछैयां है, हड़ोरा है या गंगतीरी है। झांख है या अंधड है अथवा भबूरा है या सुरैरा है। अथवा हड़कंप।

शब्द-रचना की प्रक्रिया में जानपद-जन की महत्ता को पाणिनि और पतंजलि जैसे महान् वैयाकरणों और भाषातत्वविदों ने रेखांकित किया है।

तद्भवीकरण की तो समूची प्रक्रिया जनपदीय-जीवन में ही होती है। संस्कृत से प्राकृत का विकास जनपदीय-जीवन में ही होता है। लेकिन आज केवल स्वर-वाचकों की चर्चा करें। जनपदीयजन खुले आसमान के नीचे रहता है, प्रकृति के उन्मुक्त परिवेश में रहता है, इसलिए प्रकृति से उसकी मौलिक पहचान है। पशुपक्षी, कीट-पतंग, सरीसृप, जलचर के स्वभाव और स्वर की भी पहचान जानपद-जन ने की है ।

डॉ. राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी
सेवानिवृत्त प्रोफेसर

इसलिए वे स्वरवाची शब्द भी देशज हैं, लोकगीत तथा लोककहानियों में इस प्रकार के बहुत से प्रयोग मिल जाते हैं। उदाहरण के लिये- कौआ का स्वर कांव-कांव, तोते की टेंटें, कबूतर का गुटुरगूं, पपीहा पीउ-पीउ बोलता है। टिटहरी टिट्टिट् करती है। चिड़िया की चींचीं, कुत्ते की भोंभों (भोंकना), बिल्ली की म्याऊं, मोर की कुहुक, कुकड़ू कूं, मुर्गे की आवाज से तो सबेरा ही हो जाता है। कोयल की कुहू-कुहू, बकरी की मैं मैं, गाय का रंभाना अथवा बां, घोड़े का हिनहिनाना, गधे की रेंक, बिजार की डुंकार, सिंह की दहाड़, हाथी की चिंघाड़, मक्खी की भिन-भिन, भ्रमर की गुंजार, सांप की फुसकार, बन्दर की घुरघुराहट आदि-आदि।

लघुकथा

ओयो रूम

कुसुम लंबे समय से दीपक से बात करते हुए आ रही थी ऑनलाइन। दोनों एक दूसरे को इतने करीब महसूस करने लगे थे जैसे एक आत्मा ही दो हिस्सों में बांट कर रख दी हो। किसी एक को सर दर्द होता तो दूसरे को अचानक ही पता चल जाता और वह उसे फोन करके पूछता कि सब कुछ ठीक तो है। किसी एक को भूख लगती तो दूसरे को टेलीपैथी से पता चल जाता और कॉल करके बोलता कि जल्दी से कुछ खा लो भूखे नहीं रहना चाहिए।

दीपक की ऑफिशियल मीटिंग कुसुम के शहर में रखी गई। दीपक ने कुसुम से मिलना चाहा और दोनों ने तय किया की ओयो रूम में मिला जाए। और दोनों ने एक कमरा एक दिन के लिए बुक कर लिया। कुसुम बहुत असमंजस में थी। दीपक के बहुत करीब महसूस करने पर भी वह खुद को दीपक को शारीरिक रूप से समर्पित करने के लिए तैयार करने में असमर्थ थी। उसके मन में तरह-तरह की ख्याल आ रहे थे।

सीमा राय द्विवेदी
लखनऊ

हालांकि उसने निश्चित कर लिया था कि अगर दीपक ने ऐसी कोई मांग की तो वह मना तो नहीं करेगी पर उसके बाद आजीवन उससे संपर्क तोड़ लेगी। आखिर वह दिन भी आ गया। दोनों एक साथ ओयो रूम पहुंचे। दीपक ने सबसे पहले स्नान किया और अपने लिए कुछ खाने को मंगाया। दोनों ने मिलकर खाया। दीपक ने उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया और बहुत रूमानियत से बोला, वैसे तो मैंने तुम्हें हमेशा अपने करीब ही पाया है। क्योंकि जब आप मन से एक होते हैं तो शरीर मायने नहीं रखता है, लेकिन आज तुमको सामने पाकर जैसे लग रहा है सारे जहान की खुशी मेरे कदमों में है। अब इस वक्त यदि मेरी मौत से आ जाए तो मुझे मंजूर होगी!

धत्त... यह क्या अनाप-शनाप बक रहे हो तुम? बोलकर कुसुम ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया। उसके बाद दीपक ने उसे अपने बचपन के बहुत सारे किस्से सुनाए और दोनों देर तक हंसते रहे। कई बार ऐसा हुआ कि हंसते-हंसते कुसुम के पेट में दर्द हो गया। और बोली अब बस करो दीपक आज ज्यादा हंस लिया तो शायद कल रोना भी पड़ जाए।

ईश्वर न करे कभी तुम्हें रोना पड़े। ईश्वर तुम्हारे हिस्से के सारे दुख मेरे हिस्से कर दें, बोला दीपक दोनों के हंसने और बात करने में कब 6 घंटे बीत गए पता ही नहीं चला... अब समय आ चला था कुसुम के विदा लेने का। आंखों में आंसू भरकर और दीपक के प्रति अगाध श्रद्धा लेकर कुसुम वहां से निकल पड़ी।

पिछले कई महीनों से ओयो रूम की तमाम किस्से सुनते, जाने कब कुसुम के भीतर ओयो रूम को लेकर एक अजीब सी वितृष्णा पलने लगी थी। आज सब समाप्त हो गई और दीपक के प्रति उसके प्रेम ने नई ऊंचाइयों को छू लिया था।

समीक्षा

मीराबेन: गांधी की सहयात्री एक तटस्थ विमर्श

सन् 2022 में सुप्रिया पाठक द्वारा लिखी पुस्तक 'मीराबेनः गांधी की सहयात्री ने'। मेरी दृष्टि में यह किताब अभी तक उस महिला के व्यक्तित्व की पड़ताल, उनका विश्लेषण, तथ्यों को उचित, निरपेक्ष, ईमानदार-निष्पक्ष तथा तटस्थ रूप से प्रस्तुत करने के सर्वाधिक गंभीर प्रयास के रूप में सामने आई है, यह कहने में कोई हर्ज नहीं है। मीरा की आत्मकथा, 'द स्प्रिट्स पिलग्रिमेज' में मीरा ने अपने जीवन के घटनाक्रमों का बखूबी व्याख्यान प्रस्तुत किया है,पर मेरा मानना है कि चाहे कितने भी प्रयास किए जाएं, आत्मकथा किसी व्यक्तित्व के विषय में वह ईमानदार आख्यान नहीं उपलब्धि प्रदान कर सकती, जो कोई जीवनीपरक पुस्तक दे सकती है।

इसके कई कारण हैं, पर मुख्य कारण यह है कि संबंधित आत्मकथा लेखक जाने-अनजाने में उन घटनाओं को लिखने से बचता है जिनका पाठकों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है अथवा जो उसकी छवि को किसी सीमा तक 'धूमिल' करती हों। इसके विपरीत एक अच्छा जीवनी लेखक वही नैरेटिव तटस्थ भाव से प्रस्तुत कर इस कमी को पूरा कर सकता है। बशर्ते कि वह तथ्यपरक हो और उस व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना, पूर्वाग्रह-मुक्त होकर लिखे। मीरा के व्यक्तित्व की झलक दिखलाती हुई सुप्रिया इस पुस्तक के एक हिस्से में बताती हैं कि मीरा स्वभाव से शांतिप्रिय थीं, इसलिए बापू की कल्पना भी उन्होंने शायद ऐसी ही की थी, परंतु उनकी कल्पना के विपरीत बापू रोज अपने आश्रम में सैकड़ों लोगों से मिलते जिनमें स्त्रियां, पुरुष, बच्चे और बुजुर्ग सभी शामिल होते थे। इस पुस्तक में लेखिका सुप्रिया पाठक ने जगह-जगह मीराबेन की आत्मकथा के संदर्भ दिए हैं, नैरेटिव बनाने में, उनकी एक छवि गढ़ने में उपयोग किया है, पर उनका लेखन पूर्वाग्रहों से मुक्त है, सरल तथा सहज है और वह मीरा को एक समग्र तथा ईमानदार दृष्टिकोण से देखती हैं, यही उनकी पुस्तक की खूबी है। बचपन में परिवार के साथ ऐश्वर्यपूर्ण ढंग से रहने के बाद, अभिजात्य परिदृश्य से सब कुछ त्याग कर भारत की चुनौतीपूर्व जिंदगी को अनुभूत करने आई मीरा का जैसे-जैसे 'ट्रांसफॉरमेशन' होता है, पाठक स्वयं उस अनुभूति से गुजरता है, उससे संबद्धता महसूस करता है।

पुस्तक - मीराबेन गांधी की सहयात्री
लेखिका - सुप्रिया पाठक
प्रकाशक -प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर।
मूल्य- रु.315
पृष्ठ -128
समीक्षक : राजगोपाल सिंह वर्मा, आगरा

तजुर्बा

"जीवन अनमोल है बेटा! इसे समाप्त करने की बात सोचना भी पाप है।" रामफल अद्वैत को समझाने की कोशिश कर रहा था। अद्वैत माथे पर हाथ रखे सिर झुकाए बैठा था। "पर चाचा! जब कोई रास्ता ही न बचा हो मौत को गले लगाने के सिवाय? पुरानी नौकरी छूटे छह महीने बीतने को आए, कई जगह एप्लाई करने के बाद कहीं से कोई कॉल नहीं" "नहीं बेटा! तजुर्बा है मेरा। कोई न कोई रास्ता जरूर निकलता है। पर हम अपने अंधियारों की गिरफ्त में इस कदर कैद होते हैं कि हमें रोशनी की आमद का एहसास ही नहीं होता।" "आपकी बात मुझे अभी तो बिल्कुल समझ में नहीं आ रही। पर आपकी बात मानते हुए फिलहाल मैंने आत्महत्या का विचार कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया है।"

गौरव वाजपेयी 'स्वप्निल'
कर अधिकारी, बलरामपुर

अद्वैत ने फांसी का फंदा तैयार कर लिया था कि तभी कॉलोनी का गार्ड रामफल एक डाक लेकर अद्वैत के क्वार्टर पर पहुंचा था।

"लो बेटा! यह तुम्हारी डाक है। अभी-अभी पोस्टमैन देकर गया है।" -भूरे रंग के रजिस्टर्ड लिफाफे को अद्वैत को सौंपते हुए रामफल ने कहा। अद्वैत ने आश्चर्यमिश्रित भाव से लिफाफा खोला। "ओह चाचा! आपका कैसे शुक्रिया अदा करूं? आपने मुझे जीवनदान दिया है। बेंगलुरू की एक बड़ी एम एन सी ने मुझे चौदह लाख रुपए सालाना की जॉब ऑफर की है।"-अद्वैत की आंखें उस अनुभव के प्रति कृतज्ञता से भर उठी थीं।

जापान का हकाटा कू शहर और हिरोशिमा

जापान में टोचो-जी बौद्ध मंदिर।

जापान का हकाटा कू शहर बहुत रमणीय है। यह शहर जापान के दक्षिणी द्वीप क्यूशू में है जो अपने सक्रिय ज्वालामुखियों, समुद्र तटों और प्राकृतिक गर्म झरनों के लिए जाना जाता है। इसी द्वीप में नागासाकी भी है। सबसे पहले हम टोचो-जी बौद्ध मंदिर गए। यह शिंगोन बौद्ध स्कूल का मंदिर है जिसके जापान में 5.5 मिलियन अनुयायी है। यह वज्रयानी स्कूल है। इसे जापानी गूढ़ बौद्ध धर्म, या पूर्वी गूढ़वाद (डोंगमी) भी कहा जाता है।

यात्रा वृत्तांत

शिंगोन शब्द चीनी शब्द का जापानी वाचन है, जो संस्कृत शब्द मंत्र का अनुवाद है। शिंगोन बौद्ध धर्म ज्ञान प्राप्ति के साधन के रूप में मंत्रों, अनुष्ठानों पर जोर देता है। भिक्षु कुकाई (774 से 835, जिंहे कोबो दाशी भी कहा जाता है) 804 ई में चीन गए थे। वहां उन्होंने बौद्ध तंत्र का अध्ययन किया और दो साल बाद जापान लौटकर वर्ष 806 ई में इस मंदिर की, शिंगोन के विशिष्ट जापानी स्कूल की स्थापना की। यहीं भिक्षु कुकाई ने तांत्रिक बौद्ध धर्म के पूर्व की ओर प्रसार के लिए प्रार्थना की थी। हमारे देश और आसपास बौद्ध धर्म की यही वज्रयानी परंपरा खूब प्रचलित है। दलाई लामा भी इसी वज्रयानी परंपरा के मानने वाले है। तिब्बत, लेह लद्दाख, सिक्किम तवांग आदि में यही परंपरा है। वज्रयान का नाम वज्र से लिया गया है। वज्रयान स्वयं को आत्मज्ञान का सबसे तेज़ तरीका मानता है।

इस तरह टोचो-जी मंदिर पूरे क्यूशू द्वीप का सबसे पुराना बौद्ध मंदिर है। जापान में वज्रयानी बौद्ध धर्म के 12 हजार से भी अधिक मन्दिर हैं। 16वीं शताब्दी के अंत में जलने के बाद, इसे वर्तमान स्थल पर स्थानांतरित कर दिया गया था। मंदिर के मुख्य प्रार्थना गृह में पहुंचकर बहुत शांति का अनुभव हुआ। लगा विचार शून्य होकर ध्यान लग गया। न कोई रोक टोक, न पूंछतांझ। शांति का मंदिर, शांति से परिपूर्ण।

इसी मंदिर में जापान में बुद्ध की सबसे बड़ी लकड़ी की मूर्ति है जो बहुत भव्य लगी। इस मूर्ति जिसकी ऊंचाई 10.8 मीटर है और इसका वजन 30 टन से अधिक है। कुमायूं के गोलू देवता मंदिर की ही तरह इस मंदिर के सामने कुछ प्रार्थना पत्र भी टंगे हुए थे। मंदिर के बाहर चेरी के खिलते पेड़ मिले। बौद्ध भिक्षुओं ने अपने बौद्ध मंदिरों में चेरी के पौधे खूब लगवाए। दो घंटे के भ्रमण के बाद हम बापस बुलेट ट्रेन से निकल पड़े और हिरोशिमा पहुंच गए।

जापान की यात्रा का एक उद्देश्य यह भी था कि हिरोशिमा और नागासाकी के 1945 के परमाणु हमले में मृत लोगों को नमन किया जाए, देखा जाए कि कैसे इतनी बड़ी त्रासदी को जापान ने झेला, उबरा और फिर अपने को खड़ा किया।

शैलेन्द्र प्रताप सिंह
से.नि., पुलिस महानिरीक्षक

उल्लेखनीय है मानवता के सबसे बड़े दुशमन परमाणु बम का प्रयोग पहली और अभी तक आंखिरी बार होरीशिमा और नागासाकी पर हुआ था जिसमें हिरोशिमा में 90,000 से 146,000 लोग और नागासाकी में 60,000 से 80,000 लोग मारे गए थे और उसके रेडियेशन से लाखों लोग बाद में मरे या विकलांग होते रहे। अमेरिका ने होरीशिमा को पहले लक्ष्य के रूप में इसलिए चुना था क्योंकि उस समय यह जापान का एक महत्वपूर्ण आर्थिक और सैन्य केंद्र था। जब जापान ने आत्मसमर्पण नहीं किया तो नागासाकी दूसरा लक्ष्य बना था। परमाणु बमबारी के प्रभाव से लगभग आधे लोग पहले दिन ही मरे। उल्लेखनीय है जापान के अन्य प्रमुख यथा टोक्यो आदि शहर पहले ही हवाई हमले नष्ट किए गए थे। घटना 6 अगस्त 1945 की है। हिरोशिमा शहर का आसमान साफ था। सुबह सवा आठ बजे मानव इतिहास का पहला परमाणु बम अमेरिका ने इस शहर पर गिराया। बताते हैं कि लोगों को ऐसा लगा जैसे उन्हें आग के लावे में डाल दिया गया हो।

हम पहले हिरोशिमा कैसल गए। यह कैसल (जिसे आप महल/किला कह सकते है) पहाड़ी और पर्वतीय इलाक़े के न बनाकर शहर के बीच में एक मैदान पर बनाया गया था जो पांच मंजिल ऊंचा है, चारों तरफ़ खाई से घिरा हुआ है। महल के परिसर में एक मंदिर, कुछ खंडहर और निनोमारू (रक्षा का दूसरा घेरा) की कुछ पुनर्निर्मित इमारतें भी हैं। बताया गया हिरोशिमा एक महल शहर के रूप में विकसित हुआ था। महल शहर का भौतिक और आर्थिक केंद्र था। शक्तिशाली सामंत मोरी तेरुमोटो द्वारा 1589 में निर्मित, हिरोशिमा कैसल पश्चिमी जापान में सत्ता का एक महत्वपूर्ण केंद्र था जिसे 1945 में परमाणु बम द्वारा नष्ट कर दिया गया था। तेरह साल बाद, इसके मुख्य किले को फिर से बनाया गया था। किले के अंदर हिरोशिमा और महल के इतिहास और सामान्य रूप से जापानी महलों पर एक जानकारीपूर्ण संग्रहालय है, जबकि शीर्ष मंजिल से आसपास के शहर के मनोरम दृश्यों का आनंद लिया जा सकता है।

कैसल अच्छा लगा पर जल्दी थी वह इमारत देखने की जो परमाणु बम से भी नहीं डरी, आज भी खड़ी है पर है खंडहर के रूप में। पता चला परमाणु बम इस इमारत के लगभग 160 मीटर दक्षिण पूर्ण में फटा था पर परमाणु बम की 'अपरिमित' शक्ति भी इस बिल्डिंग को नष्ट नहीं कर सकी। इस बिल्डिंग को आज एटॉमिक बम डोम (परमाणु बम गुम्बद) के नाम से जाना जाता है। हिरोशिमा के निवासियों ने अपने जख्मों के इस साक्षात सबूत को सहेज कर रखने का फैसला किया है। इस बिल्डिंग को 1996 में वर्ल्ड हेरिटेज साइज घोषित किया गया।

एटॉमिक बम डोम (परमाणु बम गुम्बद)

हिरोशिमा कैसल।

अमेरिका द्वारा गिराया गया परमाणु बम 600 मीटर की ऊंचाई पर फटा था। बताया गया उस वक्त ये इमारत हिरोशिमा का परफेक्चरल इंडस्ट्रियल परमोशन हॉल था। हिरोशिमा की अंग्रेजी वेबसाइट विजिटहिरोशिमा डॉट नेट की एक रिपोर्ट के मुताबक जब बम का डिटोनेशन किया गया तो उससे प्रति वर्ग मीटर 35 टन प्रेशर का निर्माण हुआ, और वहां पर 440 मीटर प्रति सेकंड की प्रलयंकारी हवा बही। कमाल की बात ये थी कि ये इमारत इस शक्तिशाली विस्फोट और दहकते लावे से भी अधिक की गर्मी को बर्दाश्त कर गया, हालांकि उस वक्त ये आग का गोला बन गया था। विशेषज्ञ मानते हैं कि चूंकि धमाका बिल्डिंग की गुम्बद के ठीक ऊपर हुआ था, इसलिए बिल्डिंग की मोटी दीवारें और स्टील का बना गुम्बद इस विध्वंसकारी ताकत को बर्दाश्त कर गया और ये पूर्ण रुप से नष्ट नहीं हुआ। हालांकि उस वक्त जो लोग इस बिल्डिंग के अंदर थे वे तुरंत मारे गए, बिल्डिंग की आतंरिक साज-सज्जा आग में जलकर खाक हो गई। जापान में लगातार आते भूकंप के झटके के बीच इस बिल्डिंग को इसके वास्तविक रुप में सहेज कर रखना जापानी इंजीनियरों के लिए चुनौती से कम नहीं है। दरअसल एक जापानी स्कूल लड़की की दर्दभरी डायरी को पढ़ने के बाद ही इसे स्मारक के रुप में सहेजने का फैसला लिया गया। सडाको नाम की ये बच्ची विस्फोट के बाद रेडिएशन की चपेट में आ गई थी। बाद में 16 साल की उम्र में ल्यूकेमिया की वजह से इस लड़की की मौत हो गई थी।

पता चला इस विस्फोट से 90 प्रतिशत चिकित्सक और नर्स मारे गए या घायल हो गए, 45 में से 42 अस्पताल काम नहीं कर रहे थे, और 70 प्रतिशत पीड़ितों को कई चोटें आईं, जिनमें से ज़्यादातर मामलों में गंभीर जलन भी शामिल थी। दुनिया भर में सभी समर्पित बर्न बेड किसी भी शहर पर एक भी परमाणु बम के बचे हुए लोगों की देखभाल के लिए अपर्याप्त होंगे। हिरोशिमा और नागासाकी में, ज्यादातर पीड़ित बिना किसी देखभाल के मर गए। बमबारी के बाद सहायता प्रदान करने के लिए शहरों में प्रवेश करने वाले कुछ लोग भी विकिरण (रेडियेशन) से मर गए। जापानी जज्बे की धरोहर देखकर अच्छा लगा। पास ही पीस मेमोरियल म्यूजियम है जहां मृतकों को नमन किया।

वेज पफ पिज्जा

रूचिका परिहार
फूड ब्लॉगर

जब कभी बाजार में सभी रेस्टॉरेंट बंद है पर बच्चों को कुछ न कुछ चटपटा तो चाहिए ही। और वो सभी बच्चो का पसंदीदा पफ पिज्जा हो तो चाहिए ही क्या। पफ पिज्जा में लगने वाली सामग्री अधिकतर घर पर ही मिल जाती है तो ऐसी कोई दिक्कत भी नहीं की सिर्फ इसके लिए बाहर जाना पड़े। तो आइये बनाते है पिज्जा पफ

सामग्री

- मैदा-2 कप (250 ग्राम)
- नमक- छोटी चम्मच या स्वादानुसार
- बेकिंग पाउडर- 1.5 छोटी चम्मच
- तेल -कप
- टमाटर- कप (बारीक कटा हुआ)
- गाजर- कप (बारीक कटी हुई)
- शिमला मिर्च - कप (बारीक कटी हुई)
- स्वीट कॉर्न - कप
- मोजेरीला चीज़ - कप (कद्दूकस की हुई)
- टमैटो सॉस -2 टेबल स्पून
- पिज्ज़ा सॉस-1 टेबल स्पून
- अदरक - इंच टुकडा (बारीक कटा हुआ)
- ऑरिगेनो- छोटी चम्मच
- तेल -तलने के लिए

बनाने की विधि

एक बड़े प्याले में मैदा निकाल लीजिए। मैदा में 1/2 छोटी चम्मच नमक, बेकिंग पाउडर, तेल डालकर सभी चीजों को अच्छी तरह मिला लीजिए। फिर नॉर्मल पानी लीजिए और पानी की सहायता से थोड़ा सख्त आटा गूंथकर तैयार कर लीजिए। इतना आटा लगाने में 1/2 कप ठंडे पानी का उपयोग हुआ है। आटे को ढककर आधे घंटे के लिए रख दीजिए, आटा सैट होकर तैयार हो जाएगा।

स्टफिंग बनाएं

पिज़्ज़ा पफ की स्टफिंग बनाने के लिए पैन में 2 छोटी चम्मच तेल डालकर गरम कर लीजिए। तेल के गरम होने पर इसमें बारीक कटा हुआ अदरक डाल कर हल्का सा भून लीजिए। इसके बाद, इसमें बारीक कटी हुई गाजर, बारीक कटी शिमला मिर्च और स्वीट कॉर्न डालकर लगातार चलाते हुए 1 मिनिट के लिए भून लीजिए। फिर, इसमें बारीक कटा हुआ टमाटर डाल दीजिए और मिक्स कर लीजिए। साथ में छोटी चम्मच नमक, ऑरिगेनो और 1 टेबल स्पून पानी डालकर मिक्स कर दीजिए।

सब्जियों को ढककर 2 मिनिट पकने दीजिए। 2 मिनिट बाद सब्जी चैक कीजिए। सब्जियां पककर तैयार हैं। इसमें टमैटो सॉस और पिज़्ज़ा सॉस डालकर अच्छे से मिक्स करते हुए 1/2 मिनिट पका लीजिए। स्टफिंग बनकर तैयार है। गैस बंद कर दीजिए और पैन को गैस पर से उतार कर जाली स्टैन्ड पर रख दीजिए और सब्जियों को ठंडा होने दीजिए।

स्टफिंग के ठंडा होने पर इसमें मोजेरिला चीज़ मिला कर अच्छे से मिक्स कर दीजिए।

आटा सैट हो जाने पर हाथ पर थोड़ा सा तेल लगाकर आटे को थोड़ा सा मसल लीजिए। इसके बाद इस आटे से 3 बराबर की लोइयां बना लीजिए। एक लोई उठाइए और हाथों से मसलकर गोल आकार देते हुए इसे रोलिंग बोर्ड पर रखिए और बेलन से लम्बाई में हल्का मोटा बेलते हुए तैयार कर लीजिए। बेली गई लोई को किनारों से 9 इंच और 4.5 इंच की चौड़ाई में आयताकार शीट काटकर तैयार कर लीजिए।

इस शीट को लम्बाई और चौड़ाई में दो भाग करते हुए काट लीजिए। शीट के किनारों के चारों और पानी लगा लीजिए। इसके बाद, थोड़ी सी स्टफिंग को एक टुकड़े में रखकर किनारे छोड़ते हुए लम्बाई में फैला दीजिए और दूसरे टुकड़े पर भी थोड़ी सी स्टफिंग रख कर लम्बाई में फैला दीजिए। प्लेन शीट को स्ट्रिफंग वाली शीट के ऊपर रखकर चारों ओर से हल्के हाथों से दबाव देते हुए चिपका लीजिए। और दूसरी प्लेन शीट से दूसरी स्टफिंग वाली शीट को ढककर चिपका दीजिए। फोर्क की मदद से चारों ओर हल्का दबाव देते हुए निशान बना दीजिए। इससे ये शीट अच्छे से चिपक भी जाती है और देखने में भी अच्छी लगती है। इस तैयार पिज़्ज़ा पफ को ट्रे मे रख दीजिए और सारे पिज़्ज़ा पफ इसी तरह बनाकर तैयार कर लीजिए। इन पिज़्ज़ा पफ को 1/2 घंटे के लिए फ्रिज में रख दीजिए।

पिज़्ज़ा पफ बनाने के लिए कढ़ाही में तेल डालकर गरम कीजिये, पिज़्ज़ा पफ तलने के लिए तेल मीडियम गरम होना चाहिए। तेल सही से गरम हुआ है इसे चैक करने के लिए इसमें थोड़ा सा आटे का टुकड़ा डालकर देख लीजिए अगर टुकड़ा सिक रहा है, तो तेल पर्याप्त गरम है।

मीडियम गरम तेल होने पर एक पिज़्ज़ा पफ उठाइये और गरम तेल में डालिये। पिज़्ज़ा पफ को कलछी से पलट-पलट कर गोल्डन ब्राउन होने तक तलिए। पिज़्ज़ा पफ के गोल्डन ब्राउन होने पर इसे कलछी से उठाइए और कढ़ाही के किनारे पर थोड़ी देर रोककर रखिए ताकि अतिरिक्त तेल कढ़ाही में ही वापस चला जाए और पफ को निकालकर प्लेट में रख दीजिए। इसी तरीके से सारे पिज़्ज़ा पफ तलकर तैयार कर लीजिए। एक बार के पिज़्ज़ा पफ तलने में 6 से 7 मिनिट लग जाते हैं। गरमा-गरम क्रिस्पी और टेस्टी पिज़्ज़ा पफ बनकर तैयार हैं, इन्हें मस्टर्ड सॉस, टमैटो सॉस या अपनी मनपसंद सॉस के साथ परोसिये और खाइये।

सुझाव

1. अगर आप तीखा खाना पसंद करते हैं तो स्टफिंग में 2 हरी मिर्च बारीक काट कर मिक्स कर दीजिए या 2 सूखी लाल मिर्च को कूटकर चिल्ली फ्लेक्स बनाकर भी इसमें डाल सकते हैं।
2. पिज़्ज़ा पफ को चारों ओर से अच्छे से पानी से चिपकाएं ताकि इसमें से स्टफिंग बाहर न आने पाए।
3. पिज़्ज़ा पफ को फ्रिज में रख कर तला जाए तो इस पर बबल नहीं आते और बहुत अच्छे पिज़्ज़ा पफ फूलकर तैयार होते हैं।

साप्ताहिक राशिफल

-पं.मनोज कुमार द्विवेदी
ज्योतिषाचार्य, कानपुर

मेष
इस सप्ताह आपको धन-धान्य की प्राप्ति होगी। करियर-कारोबार में अनुकूलता बनी रहेगी। आपको घर-परिवार के सदस्यों से पूरा सहयोग और समर्थन मिलेगा। जिसकी बदौलत आपके सोचे हुए काम समय पर पूरे होंगे तथा संपत्ति से जुड़े विवाद का समाधान आसानी से निकल आएगा।

वृष
यह सप्ताह आपके लिए लाभदायक होगा। यदि आप बेरोजगार हैं और रोजी-रोटी की तलाश में हैं तो आपको प्रयास करने पर सफलता मिलने का योग बनेगा। वहीं पहले से नौकरी कर रहे लोगों को कार्यक्षेत्र में अनुकूलता बनी रहेगी। कार्यक्षेत्र में सीनियर और जूनियर दोनों ही आप पर पूरी तरह से मेहरबान रहेंगे।

मिथुन
यह सप्ताह थोड़ी ज्यादा ही व्यस्तता लिए रहने वाला है। हालांकि तमाम तरह की आपाधापी के बीच आपको जीवन में आगे बढ़ने के अवसर भी प्राप्त होंगे, जिन्हें आपको भूलकर भी खोना नहीं चाहिए। अध्ययन-अध्यापन करने वाले लोगों के लिए बेहद शुभ रहने वाला है। परीक्षा-प्रतियोगिता की तैयारी में जुटे छात्रों को सप्ताह के मध्य में कोई बड़ी खुशखबरी मिल सकती है।

कर्क
यह सप्ताह बड़ी मुसीबतों से छुटकारा और कोर्ट-कचहरी से जुड़े मामलों में राहत दिलाने वाला रहने वाला है। किसी व्यक्ति विशेष की मदद से आपके कार्य विशेष में आ रही अड़चन दूर होगी। भूमि-भवन से जुड़े विवाद सुलझेंगे। यदि किसी मामले को लेकर आपको कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाने पड़ रहे हैं तो आपको उससे मुक्ति मिल सकती है।

सिंह
यह सप्ताह मिलाजुला रहने वाला है। जहां आपके कार्य तेजी से बनते हुए नजर आएंगे तो वहीं सप्ताह के उत्तरार्ध में बड़ी अड़चन आने के कारण आपका मन हताश और निराश रह सकता है। उतावलेपन और किसी भी काम को जल्दबाजी में करने से बचने की जरूरत रहेगी।

कन्या
यह सप्ताह करियर-कारोबार की दृष्टि से शुभ तथा रिश्ते-नाते की दृष्टि से कुछ प्रतिकूल रहने वाला है। ऐसे में आपको किसी के साथ बातचीत करते समय खूब सावधानी बरतने की आवश्यकता रहेगी। इस आपको आवेश में आकर किसी को बुरे वचन कहने से बचना चाहिए अन्यथा न सिर्फ आपके बने-बनाए काम बिगड़ सकते हैं।

तुला
यह सप्ताह तमाम उलझनों को सुलझाने और बिगड़ी बातों को बनाने वाला है। यदि किसी बात को लेकर आपकी स्वजनों के साथ तकरार चल रही है तो किसी वरिष्ठ व्यक्ति की मध्यस्थता से आपकी सारी गलतफहमियां दूर हो जाएंगी और आपके रिश्ते एक बार फिर से पटरी पर आ जाएंगे।

वृश्चिक
यह सप्ताह में क्रोध एवं जल्दबाजी करने से बचना होगा अन्यथा न सिर्फ उनके बने-बनाए काम बिगड़ सकते हैं बल्कि शारीरिक एवं आर्थिक नुकसान झेलना पड़ सकता है। आपको अपनी सेहत और संबंध पर विशेष ध्यान देना होगा। आपको पेट संबंधी पीड़ा होने की आशंका है। ऐसे में अपना खान-पान और दिनचर्या ठीक रखें और किसी भी रोग की अनदेखी न करें।

धनु
इस सप्ताह आपको भाग्य का पूरा साथ मिलेगा और आप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना अच्छा प्रदर्शन करते हुए नजर आएंगे। आपको मनचाही सफलता और धन की प्राप्ति होगी। यदि आप व्यवसाय से जुड़े हुए हैं तो आपका बाजार में फंसा हुआ धन अप्रत्याशित रूप से निकल आएगा और आपको कारोबार में बड़े लाभ की प्राप्ति होगी।

मकर
यह सप्ताह बड़े बदलाव का कारण बनेगा। नौकरीपेशा लोगों पर अचानक से कोई नई जिम्मेदारी आ सकती है। कार्यक्षेत्र में अचानक तबादला हो सकता है। कार्यक्षेत्र में अपनी साख को बचाने के लिए आपको अधिक परिश्रम और प्रयास करना पड़ेगा।

कुंभ
यह सप्ताह में किस्मत के भरोसे बैठे रहने की बजाय अपने कर्म पर भरोसा करना चाहिए तभी उनके सोचे हुए काम समय पर पूरे हो पाएंगे। इस सप्ताह अपने काम को पूरा करने के लिए अतिरिक्त परिश्रत और प्रयास करना होगा। कामकाज के सिलसिले में लंबी दूरी की यात्रा के योग बनेंगे।

मीन
यह सप्ताह शुभता और सौभाग्य को लिए हुए है। कार्यों में मनचाही सफलता और कारोबार में मनचाहा लाभ प्राप्त होगा। करियर-कारोबार के सिलसिले में की गई यात्रा सुखद एवं बड़ी सफलता प्रदान करेगी। इस दौरान सत्ता-सरकार से जुड़े लोगों के साथ संबंध बनेंगे।

वर्ग पहेली (काकुरो)

काकुरो पहेली वर्ग पहेली के समान हैं, लेकिन अक्षरों के बजाय बोर्ड अंकों (1 से 9 तक) से भरा है। निर्दिष्ट संख्याओं के योग के लिए बोर्ड के वर्गों को इन अंकों से भरना होगा। आपको दी गई राशि प्राप्त करने के लिए एक ही अंक का एक से अधिक बार उपयोग करने की अनुमति नहीं है। प्रत्येक काकुरो पहेली का एक अनूठा समाधान है।

काकुरो 80

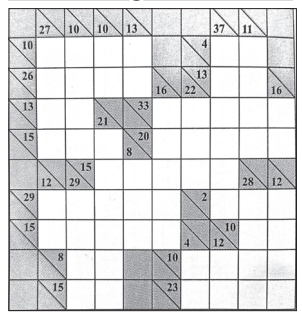

काकुरो 79 का हल

	3	26			4	16	13	
10	2	8	17	1	7	9		
26	1	7	2	3	9	4		
	3	2	1	10	9			
	18	9	6	1	2	22	26	
			30	9	7	8	6	
			14	16	6	5	3	13
		36	6	7	1	9	8	5
		22	8	9	5	17	9	8

घ से घोड़ा, बचा है थोड़ा

पालतू प्राणियों में भारतवर्ष में प्राचीन वैदिक काल से ही गौ के पश्चात अश्व अर्थात घोड़े का सर्वाधिक महत्व रहा है। वैदिक काल में होने वाले बड़े-बड़े यज्ञों में दक्षिणा में गौ के पश्चात अश्व देने का भी व्यापक विधान मिलता है अश्वमेध यज्ञ की तो प्रधान विषय वस्तु घोड़ा ही है। वेदों में जिन पालतू प्राणियों का नाम सर्वाधिक आया है उनमें गाय के पश्चात घोड़ा दूसरा है।

आयुर्वेद की प्रसिद्ध औषधि अश्वगंधा को तो नाम ही अश्व जैसी गंध के कारण मिला है। आमजन से लेकर राजवंशों ने इसकी पीठ पर सवार होकर सफलता के शिखरों को चुमा है। युद्ध हो या शांति काल घोड़े के बगैर जीवन निर्वाह की कल्पना नहीं की जा सकती थी। एक धावक अरबी या काठियावाड़ी घोड़ा 50 से लेकर 90 किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार तक दौड़ सकता है।

आर्य सागर खारी
नोएडा

पूरे विश्व में घोड़े की 300 से अधिक नस्ल पाई जाती हैं। भारतवर्ष में भी दर्जनों घोड़े की नस्ल हैं जो आदिम वन्य जंगली घोड़ो से विकसित हुई। मारवाड़ी रेगिस्तान के घोड़े में अलग सामर्थ्य है तो पहाड़ का भूटानी घोड़ा अलग चुनौती परिवेश का सामना करने के लिए बना है लेकिन चिंताजनक आंकड़ा यह है वर्ष 2019 की राष्ट्रीय पशु गणना में घोड़े की आबादी तीन लाख से कम पूरे देश में रह गयी है। लोहे के घोड़े कार, रेल, हवाई जहाज ने जीते जागते हाड मांस के घोड़ों को प्रचलन से बाहर कर दिया है। हो सकता है एक दिन आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस सर्वाधिक बुद्धिमान रफ्तार के शौकीन इंसान को भी प्रचलन से बाहर कर दें।

कुछ रोचक तथ्य

- घोड़ा अकेला ऐसा जानवर है जो अधिकांस खड़ा होकर सोता है।
- घोड़ा मुंह से सांस नहीं ले सकता।
- घोड़ा कभी वोमिट अर्थात उल्टी नहीं कर सकता।
- घोड़े की सुनने की क्षमता जबर्दस्त होती है 4 किलोमीटर दूर से भी है किसी आहट को सुन सकता है।
- हाथी के बाद घोड़े की याददाश्त सर्वाधिक होती है। यह अपने स्वामी सेवक को कभी नहीं भूलता। इसकी आंखों पर पट्टी भी बांधी जाए तो अजनबी के स्पर्श को यह पहचान लेता है।
- घोड़े की आयु 30 वर्ष होती है।
- घोड़े के बच्चे पैदा होते ही दौड़ने लगते हैं।
- पहले माना जाता है घोड़ा कलर ब्लाइंड होता है लेकिन अब यह सिद्ध हो गया है यह रंगों को पहचान सकता है।
- यू तो घोड़ा 360 डिग्री पर देख सकता है बगैर घूमे लेकिन इसे अपने चहरे नाक के ठीक सामने व पूछ के ठीक पीछे की कोई वस्तु दिखाई नहीं देती यह इसके ब्लाइंड स्पॉट है।
- घोड़ा एक समय में दो गंध को सूंघ सकता है। सूंघकर यह अपने सेवक को भी पहचान लेता है। स्वामी भक्ति इसमें कूट-कूट कर भरी होती है।
- घोड़ा उत्तम तैराक भी होता है।

गुमनाम हीरो की कहानी फिल्म मैदान

ये फिल्म खास है अपनी कहानी के लिए। कहानी है एक ऐसे किरदार की जिसके बारे में पढ़ा तो छोड़िए कभी सुना भी नहीं था। जी हां, एक ऐसा गुमनाम हीरो जिसके बारे में हर भारतीय को जानना ही चाहिए। ये स्पोर्ट्स ड्रामा फिल्म, आधारित है 1952-1962 के बीच भारतीय फुटबाल टीम के कोच रहे सैयद अब्दुल रहीम पर।

निर्मल कुमार

ये समय भारतीय फुटबाल का स्वर्णिम काल कहा जाता है क्यूंकि यही वो समय था जब भारत ने ना केवल दो बार एशिया कप में स्वर्ण हासिल किया बल्कि ओलंपिक्स में सेमी फाइनल तक का सफर भी तय किया। उस वक्त भारत को एशिया का ब्राजील कहकर भी सराहा गया।

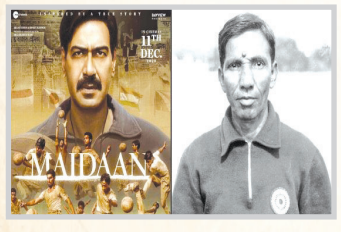

फिल्म की पटकथा बहुत अच्छे से लिखी गई है और फोकस उसी कालखंड पर रखा गया है। इसे सैयद अब्दुल रहीम की जीवनी ना बनाकर उनका फुटबाल के प्रति प्रेम और जुनून दिखाने पर ही फोकस रखा गया है।

अजय देवगन यकीनन अच्छे कलाकार हैं और उन्होंने किरदार को बहुत अच्छे से जिया है। मध्यांतर के बाद दर्शकों का किरदार के साथ भावनात्मक जुड़ाव चरम पर होता है जब पता चलता है कि कोच को कैंसर है और फिर भी उन्हें अपनी जिंदगी से ज्यादा परवाह भारतीय फुटबाल टीम को पुनः जागृत करने की है।

फिल्म के गीत भले ही जुबान पर ना चढ़े हों पर फिल्म देखते वक्त ए आर रहमान का संगीत अच्छा लगता है। और सबसे ज्यादा तारीफ बनती है ये प्रोजेक्ट करने के लिए निर्देशक अमित शर्मा की जो इसके सहायक पटकथा लेखक भी हैं।

एक बार तो देखनी ही चाहिए किसी के खेल के प्रति सम्मान और जज्बे के लिए।

जेल से सुल्ताना ने फ्रेडी को भिजवाया था संदेशा

कुल मिलाकर पानी फिर ही गया। ये अलग बात है कि वज़ह एंडरसन नहीं एक अति-उत्साही सिपाही बना। एंडरसन जब किसी हाल में जिम कॉर्बेट को अकेले जाने देने के लिए राजी नहीं हुए तो ऐसी स्थिति में फ्रेडी ने यह तय पाया कि सारे एक साथ आगे बढ़ेंगे। जब ये लोग सुल्ताना के अड्डे से कुल 200 गज की दूरी पर थे उसी समय एक नवयुवक सिपाही ने मचान पर नज़र पड़ते ही गोली दाग दी। मचान पर बैठे दोनों चौकीदार पलक झपकने का मौका दिए बगैर फुर्ती से उतरे और नीचे बंधे अपने घोड़ो पर बैठ हवा में घुलमिल गए।

अब सावधानी बरतने का मौका हाथ से निकल चुका था। फ्रेडी की गरजती हुई आवाज़ में हमले का हुक्म ज़ारी हुआ। अड्डा घेर लिया गया लेकिन हाथ कुछ न आया। अड्डे भीतर निचाट निस्तब्धता से भरा हुआ था। पूरी तरह वीरान। कोई परिंदा भी पर नहीं मार रहा था। सारे मन मसोस कर रह गए।

अड्डे के नज़ारा कुछ इस तरह था, अड्डा एक छोटे-से टीले पर था। वहां तीन टेंट लगे हुए थे और फूस की एक झोपड़ी में रसोई थी। एक टेंट में आटे, चावल, दाल, चीनी वगैरह के बोरे, घी के पीपे और बारह बोर के हजारों कारतूसों का ढेर हुआ था। इसके अलावा वहां खोल में बंद ग्यारह बंदूकें थीं। बाकी दोनों तंबुओं में कंबल और गद्दे पड़े हुए थे और रोजाना इस्तेमाल का ढेरों सामान जिसमें डकैतों के कपड़े भी शामिल थे, फैले पड़े थे। रसोई के पास, पेड़ की डाल से जिबह किए हुए तीन बकरे लटक रहे थे। चौकीदारी कर रहे डाकू जब भाग कर यहां पहुंचे होंगे तो जाहिर तौर ओर वहां भारी अफरा-तफरी मच गई होगी। जो जैसी हालात में रहा होगा जान बचाने को भगा होगा। मुमकिन है कि कुछ डाकू अधनंगे ही पास की ऊंची घास में जा छिपे होंगे। अड्डे के पास वाले नाले में दस-बारह लोगों के इस नंगे पैर भागने के निशान मिले। इन निशानों के सहारे आगे चलकर ये जानने की कोशिश की गई कि आखिरकार डकैत भागकर किस तरफ़ गए। नाला करीब पंद्रह फीट चौड़ा और पांच फीट गहरा था। नाले के किनारे-किनारे फ्रेंडी, एंडरसन और कॉर्बेट करीब दो सौ गज चले होंगे कि डकैतों के पांव के निशान कंकड़ीली ज़मीन में गुम हो गए।

डॉ. नीलिमा पांडेय
प्रोफेसर, लखनऊ विश्वविद्यालय

जहां ये केकड़ीली जमीन खत्म और होती थी वहां नाला कुछ और चौड़ा हो गया था और बाएं किनारे पर एक विशालकाय बरगद का पेड़ था। नाले का पानी इंसानी टुड्डी छूने पर था और मिट्टी इतनी कच्ची कि पैर टिकना मुश्किल। इस वज़ह से बरगद तक पहुंचना मुश्किल हो रहा था। पेड़ घना था और उसमें तमाम लोगों के छिपे होने की गुंजाइश थी। इससे पहले की तफ्तीश का कोई कारगर तरीका ढूंढा जाए माहौल गोलियों की आवाज़ से थर्रा उठा। अड्डे के पास एक हवलदार और एक डकैत ज़ख्मी मिले। दोनों ने अस्पताल पहुंचने से पहले दम तोड़ दिया। हर्बर्ट और उसके घुडसवारों की सूचना सुल्ताना को मिल गई थी। इसलिए हर्बर्ट को कुछ करने का मौका नहीं मिला। एक भी घुड़सवार उसके हत्थे नहीं चढ़ा। कुल मिलाकर फ्रेडी को अड्डे ओर मौजूद बंदूकों को जब्त करके संतोष करना पड़ा। अभी फ्रेडी बार-बार मिलने वाली नाकामी से जूझ ही रहे थे कि एक रोज उन्हें सुल्ताना की भेजी चिट्ठी मिली। अफसोस जाहिर करते हुए लिखा गया था कि, "क्या पुलिस महकमे में गोला-बारूद, गोली-बन्दूक की इस कदर कमी हो गयी है कि उन्हें सुल्ताना के अड्डे पर छापेमारी से हासिल किया जा रहा है।" साथ ही उसने पेशकश की थी कि आगे कोई ज़रूरत हो तो फ्रेडी को सीधे सुल्ताना को ख़बर भेजनी चाहिए। जरूरत का सामान पहुंच जाएगा और किसी की जान भी जोखिम में नहीं पड़ेगी थी तो ये चिढ़ाने वाली बात पर फ्रेडी की चिंता इस बात की अधिक थी कि वो कुछ भी करके वह सुल्ताना को पहुंचने वाली असलहों की आमद को रोक नहीं पा रहा था। हथियार बेचने वाले पुलिस के आदेश की नाफरमानी कर सुल्ताना को ख़ुश रखते थे। सुल्ताना से बैर के एके ही मायने थे मौत को गले लगाना। जाहिर तौर पर कोई इस हश्र को नहीं पहुंचना चाहता था।

सुल्ताना का अड्डा तो खत्म हो चुका था। वह अपने गिरोह के साथ एक सिरे से दूसरे सिरे तक तराई और भाबर के बीच छिपता घूम रहा था। उसके गिरोह के लोग घटकर चालीस रह गए थे लेकिन सब के सब बेहतरीन तरीके से हथियारबंद थे। पुलिस के छापे में जप्त हुए हथियारों से आई कमी के बदले तुरंत ही नए हथियार सुल्ताना ने हासिल कर लिए थे। फ्रेडी को लगता था कि अब वक्त आ गया है कि सुल्ताना हथियार डाल दे। फ्रेडी ने सुल्तान से हथियार डलवाने की इज़ाज़त भी सरकार से ले ली थी। हालांकि पहली दोस्ताना मुलाकात में सुल्ताना ने फ्रेडी के प्रस्ताव को सिरे से नकार दिया। इसलिए फ्रेडी के पास दबिश देने से सिवा दूसरा कोई चारा न था। भले ही सुल्ताना ने हथियार डालने से साफ इंकार कर दिया था लेकिन हकीकत में वह और उसके गिरोह के लोग अब भागते-भागते थक चुके थे। हाल-फिलहाल नजीबाबाद के जंगलों के बीचों-बीच एक मवेशीखाने को उन्होंने अपना अड्डा बना रखा था। अगली मुहिम मवेशी खाने को घेरने की थी। तय पाया गया कि नाव में सवार होकर फ्रेडी का दल-बल गंगा का आचमन करते हुए अपने मकाम पर पहुंचेंगे और चुपचाप जंगल से गुज़रते हुए मवेशी खाने को घेर लेंगे।

तमाम मशक्क़त के बाद फ्रेडी का दल सुल्ताना के अड्डे तक जा पहुंचा और घात लगाकर बैठ गया। मुखबिर से पता चला कि सुल्ताना अपने बचे-खुचे नौ साथियों के साथ हरिद्वार की तरफ किसी गांव में डकैती डालने निकला है। फ्रेडी के पास इंतज़ार करने के सिवा कोई दूसरा चारा न रहा।

भूखे-प्यासे अपने दल के साथ घड़ी के कांटे पर नज़र गड़ाए वह इंतज़ार करने लगा।

हरिद्वार में डकैती डाल कर सुल्ताना देर शाम मवेशियों के बाड़े पर लौट आया। इस बार किसी वजह से वह पुलिसिया गतिविधियों से अंजान रहा। उसे भनक तक न लगी कि उसका मवेशी बाड़ा पुलिस के घेरे में है। डकैतों के सो जाने तक पुलिस ने प्रतीक्षा की फिर अपना काम शुरू किया। इस बार फ्रेडी को कामयाबी मिली। जब वह सुल्ताना कमरे तक पहुंचे तो वह मुंह ढके बेसुध सो रहा था। फ्रेडी तेजी से आगे बढ़े और सोते हुए आदमी पर अपने पूरे वजन से बैठ गए। भारी भरकम फ्रेडी के नीचे दबा सुल्ताना हिलने की हालत में भी नहीं रहा। जीते जी पुलिस के हत्थे न चढ़ने की उसकी कसम टूट गई।

गिरफ्तारी के बाद जेल से सुल्ताना ने फ्रेडी को एक संदेशा भिजवाया। फ्रेडी जब उससे मुलाकात करने जेल पहुंचे तो उन्हें एक बार फिर से हैरत में डालते हुए सुल्ताना ने नजीबाबाद किले में रह रही अपनी पत्नी और बेटे के अलावा अपने पसंदीदा कुत्ते की जिम्मेदारी उनको सौंप दी। कुत्ता फ्रेडी ने खुद पाल लिया। जहां तक परिवार की बात है ये सर्वविदित है कि उन्होंने सुल्ताना परिवार की जिम्मेदारी पूरी ईमानदारी से निभाई। उसके बेटे को इंग्लैंड में तालीम दिलवा कर शानदार व्यक्तित्व का स्वामी बनाया। विदित है कि सुल्ताना का बेटा आईपीएस अधिकारी बना।

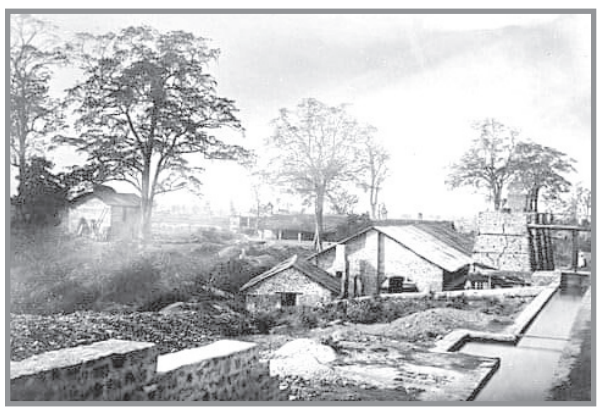

तस्वीर : कालाढूंगी की एक पुरानी तस्वीर।

नैनीताल की अदालत में सुल्ताना पर मुकदमा चलाया गया। दस्तावेज में इस मुकदमे को 'नैनीताल गन केस' कहा गया है। डाकू सुल्ताना और उसके चार साथियों को 7 जुलाई, 1924 (अंयत्र 8 जून 1924) फांसी दी गई जबकि गिरोह के 40 और लोगों को कालापानी की सजा हुई। फ्रेडी ने सुल्ताना को फांसी न देने की मांग भी की लेकिन उनकी बात नहीं मानी गई। सुल्ताना के इस किस्से को सौ बरस होने को हैं। उसने तीन बरस तक अपनी हिम्मत के बलबूते पुलिस को ख़ूब छकाया। गुनहगार तो वह था ही, बहुतेरे उससे नफ़रत भी करते थे, लेकिन अपनी बहादुरी और गरीबों के प्रति सदाशयता से उसने तमाम दिलों को भी जीत रखा था। नैनीताल में राजभवन की एक दीवार पर कुछ असलहे सज्जित हैं। इन्हें डाकू सुल्ताना की मिल्कियत बताया जाता है। दीवार का दीदार आप तस्वीर में कर सकते हैं।

नोटः सूचनाओं को विभिन्न स्रोतों से संकलित किया गया है। प्रमुख स्रोतः इंटरनेट, आर्काइव्स, हल्द्वानी-बिजनौर के बीच फैला फोक्लोर, जिम कॉर्बेट की आक्सफोर्ड से प्रकाशित पुस्तक 'माय इंडिया'।

इतिहास के झरोखे से

पंचाल राज्य का गौरवशाली इतिहास

प्रो. गिरिराज नन्दन
इतिहासकार, आंवला, बरेली

समस्त खुदाइयों के उत्खनन से प्राप्तियां

सन् 1862-63 से लेकर सन् 1940-44 तथा 1963-65 की समस्त खुदाइयों से अहिच्छत्र के टीलों से बहुत बड़ी संख्या में मौर्य काल से लेकर मध्यकाल तक के सिक्के विभिन्न प्रकार के मृद्भाण्ड, पाषाण एवं मृण्मूर्तियां, मुक्ता, मनके, मोहरें, लघु मूर्तियां, मंदिरों के अवशेष, चैत्य, स्तूप, कुण्ड (सरोवर) मठ, किले की दीवारें, सड़कें, मकान, इमारतें, फलक आदि प्राप्त हुए हैं। यह नगर पकी ईंटों का प्राचीन नगर है। यहां के विभिन्न रूपों के मृद् भाण्ड मृमूर्तियां अपना विशिष्ट ही स्थान रखती है।

अहिच्छत्र के पुरावशेष शिव मंदिर का ढांचा जो भीम गदा कहलाता है

सन 40-44 की खुदाई में वेदिक युक्त (छज्जा युक्त) ईंटों के दो मंदिर एसी 11 तथा एसीआई से चिह्नित (डिजाइन) किए गए। यह मंदिर हास होते हुए पांच (प्रदक्षिणा मथ) युक्त चौकोर हैं। तथा मध्य सार भाग सहित मिट्टी लगे प्रकोष्ठों से घिरे हुए हैं। इनमें एसीआई जो गदा कहलाता है सबसे ऊंचा कई मंजिली ढांचा है जिसकी ऊंचाई 75 फिट अथवा 23 मीटर है। इसकी सन् 1940-1944 में खुदाई की गई जिसके बारे में एक शैव मंदिर होना निकला। यहां से मृणमूर्तियों का एक बड़ा खजाना प्राप्त हुआ जो कि नई दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में संगृहीत है।

यह गुप्तकालीन शैली का है। इसमें सबसे ऊपरी चौकोर वेदिका के ऊपर निर्मित गर्भ गृह में वृत्ह्याकार शिव लिंग स्थापित है। यह पांच (प्रदक्षिणा पथ) से युक्त है। इसी प्रकार के मन्दिर का एडुका के रूप में विष्णुधर्मोतर पुराण में उल्लेख मिलता है जो कि छटी शताब्दी का है। निचले एवं सतही वेदिकाओं पर मंदिर का मूलभूत निर्माण है। यहीं पर गंगा एवं यमुना की अत्यन्त कला पूर्ण मूर्तियां स्थापित थीं। पार्श्व भाग की सीढ़ियों से यह वेदिकाएं एक दूसरे से सम्मिलित थीं। तथा पश्चिम की तरफ से मध्य सोपान पंक्ति सीढ़ियों से जुड़ी हुई थी। सबसे ऊपर वेदिका पर अनेको मृण्फलक अलंकृत थे। जिनमें भैरव के रूप में शिव, दक्षिणमूर्ति, दक्ष त्याग, शिवगण तथा शिव से सम्बन्धित वृतांत मूर्ति मुख्य रूप से थीं। इस मंदिर का निर्माण कई तल्लों की पीठिका पर हुआ था। इस पीठिका का प्रत्येक तल अपने ऊपर वाले तल के प्रदक्षिणा पथ का काम देता था। ऊपर के चतुष्कोण स्वरूप का निर्माण छोटी छोटी कोठरियों को मिट्टी से भरकर किया गया था। इस गुप्त कालीन मन्दिर का निर्माण किसी कुषाण कालीन ध्वस्त भग्नावशेष पर हुआ था क्योंकि उसकी नींव के नीचे कुषाण कालीन अवशेष पाए गए हैं।

सन् 1862-63 में अलेक्जडर कनिंघम ने भी अहिच्छत्र के खण्डहरों का गम्भीरता पूर्वक निरीक्षण किया था। उनकी आरक्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट में इस ढांचे का वर्णन है। जिसके अनुसार किले की मध्य दीवाल के निकट सबसे ऊंचा टीला एक विशाल मंदिर का है। वर्तमान में इसका रूप जमीन से 65 फुट ऊचे टावर का है। इस इमारत का बुनियादी बाहरी ढांचा 48 .3 फीट एवं 29 .9 फीट लिखा है। कनिघम ने इस मंदिर का 100 फीट ऊंचा तथा दुर्ग से बाहर की समतल भूमि से 165 फीट ऊंचा आंका है। इस समय यहां केवल ईंटों का बुनियादी ढांचा है जिस पर 8 फीट ऊंचा विराट शिवलिंग है जो कि 36 .6 आयताकार है। यह भीम की गजा नाम से प्रसिद्ध है। उसका ऊपर का किनारा एक तरफ से टूटा हुआ है। लोग उसे बिजली गिरने का कारण बताते हैं लेकिन सम्भवत : किसी मुस्लिम मूर्ति भंजक द्वारा ध्वस्त हुआ है।

कनिंघम ने एक दूसरे ढांचे का उल्लेख भी किया है। उसको भी शिव मंदिर आंका है। इन दोनों मन्दिरों के टीलों को रेवन्यू सर्वे मैप में अन्चोली बुर्ज कहा है तथा मौके पर उनको अन्चुआ कहा है। इस ढांचे के बारे में अहिच्छत्र किले के आस पास के ग्रामों में खुदाइयों से मिलती जुलती मान्यताएं ही प्रचलित हैं। उनके अनुसार इस शिव मंदिर पर भगवान का रुद्राभिषेक होता था। मन्दिर के चारों ओर की भूमि शिव गंगा कहलाती है। सामने वाला मंदिर क्षेत्रीय मान्यताओं में गिरिजा (शिव-पत्नी) मन्दिर था। पाण्डवों की किंवदन्तियों के जुड़ जाने के बाद वृहव शिव मंदिर को भीम गदा नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है। यह मंदिर पक्की ईंटों से निर्मित उत्तरी भारत से प्राप्त मन्दिरों में एक मात्र मन्दिर है इसकी निर्माण तिथि 450-650 ई. के मध्य अनुमानित की गई है।

'अहिच्छत्र के पुरावशेष' कोत्तारि खेड़ा

इसे प्रचलित भाषा में कटारी खेड़ा कहते हैं। सन् 1862-63 के उत्खनन में कनिंघम ने इसकी खोज की थी। इसकी स्थिति उन्होंने 1200 फीट किले से उत्तर में तथा 1600 फीट ग्राम नसरतगंज से पूर्व में बतायी है। उनके अनुसार यह खेड़ा 400 फीट चौकोर तथा 20 फीट ऊंचा था। यह ईंटों से दुवारा निर्मित है। जिससे इसकी मूल प्रकृति का पता कम चलता है। उसने यहां के मन्दिर की बुनियाद खोज की जो 26 फीट 3 इंच लम्बी 22 फिट चौड़ी कंकड़ भू-खण्ड की कुर्सी पर स्थित है। जिसका एक दरवाजा पूर्व की तरफ को था। यहां बुद्ध की एक खण्डित मूर्ति तथा रेलिंग मिली। एक पत्थर मिला जो गुप्त शिल्प का था। एक खम्भे का अपूर्ण भाग मिला जिसके चारों ओर सिंह की मूर्ति अंकित हैं जो कि भगवान महावीर का चिह्न है।

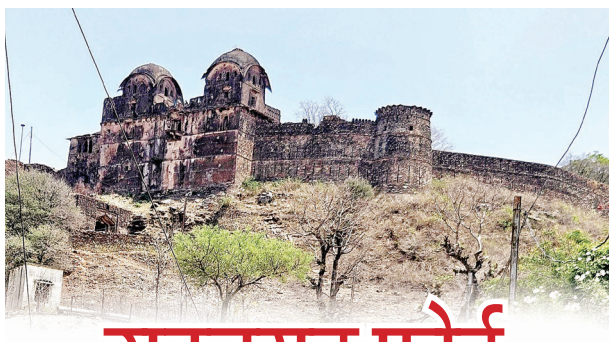

राहतगढ़ फोर्ट

तपती धूप, पहाड़ी दुर्ग, टूटी सीढ़ियां और सीधी चढ़ाई, ऐसा ही प्रारंभिक अनुभव रहा था, उस दिन जब हम पहली बार इस दुर्ग से रूबरू हुए थे। भारी गर्मी के चलते इस दुर्ग पर जाना मुश्किल था, पर इस किले से मिलने की जिद हमें इस दुर्ग के ऊपर तक ले आई।

रूपेश उपाध्याय
अपर-कलेक्टर, सागर

राहतगढ़ एक प्राचीन नगर है। बीना नदी के किनारे पहाड़ी पर बने किले के कारण प्राचीन काल से ही इसका सामरिक महत्व रहा है। इसी कारण से यह किला अलग-अलग कालखंडों में अलग-अलग शासकों के अधीन रहा है। यह किला आरंभ में धार के परमार राजा जयसिंह देव के अधीन था। बाद में गढ़ा मंडला के गौंड राजाओं के अधीन आया। रानी दुर्गावती की मृत्यु उपरांत यह किला मुगलों के अधीन हो गया। बाद में यह भोपाल रियासत के अधीन आया। सन् 1799 ई. में पिंडारी मुखिया अमीर अली ने राहतगढ़ को लूटा।

सन् 1807 से 1861 ई. तक राहतगढ़ किला और नगर सिंधया शासकों के अधीन रहा। बाद में यह अंग्रेजों की सैनिक टुकड़ी के खर्च के लिए दे दिया गया।

सन् 1857 ई. के विद्रोह के समय अंबापानी के नवाब सुल्तान मुहम्मद के वंशज फजल मुहम्मद खान ने इस दुर्ग पर आधिपत्य कर लिया। शीघ्र ही ह्यूरोज के नेतृत्व में इस विद्रोह को कुचल दिया गया। राहतगढ़ के अधिकांश पुरातत्व अवशेष अब नष्टप्रायः अवस्था में हैं,पर पहाड़ी पर 36 एकड़ में फैला किला अब भी आकर्षण का केंद्र है। किले की बाह्य दीवार में 26 मीनारे हैं। किले पर चढ़ने के लिए घुमावदार सीढ़ियां है और ऊपर पहुंचने के लिए पांच दरवाजे पार करने पड़ते हैं।

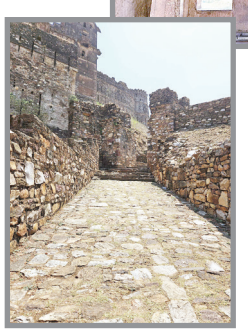

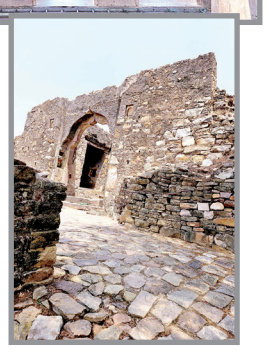

पांचवां दरवाजा किले में बादल महल के समीप खुलता है जिसे गोंड़ राजाओं द्वारा बनवाया गया था। ऊंचाई पर बनी होने से इस इमारत को बादल महल कहा जाता है। इसी इमारत के समीप एक बड़ा तालाब एवं एक मंदिर जैसी इमारत निर्मित है। बिना नदी के किनारे निर्मित ऊंची मीनार जोगन बुर्ज के नाम से जानी जाती है। इस पर से कैदियों को बीना नदी की नुकूली चट्टानों पर डाल दिया जाता था।

यद्यपि यह किला अब खंडहर जैसा हो गया है,पर कुछ इमारतें अब भी अनुरक्षण योग्य हैं। प्राकृतिक सुषमा के मध्य ऊंची पहाड़ी पर निर्मित यह दुर्ग अपनी सामरिक और प्राकृतिक विशिष्टता के कारण आज भी आकर्षण का केंद्र है। हमारी राहतगढ़ दुर्ग से मुलाकात का समय पूरा हो गया था। हम वापस राहतगढ़ रेस्ट हाउस की लौट पड़े, पर सूर्य की तपन अब भी इन मूक पत्थरों को तपा रही थी।

शैल चित्रों में छिपी है मानव सभ्यता की कहानी

इंसानों ने अपने विचारों तथा मनोभावों को अभिव्यक्त करने के लिए सबसे पहले चित्रकला का सहारा लिया था। इसको प्रकट करने के लिए आदिमानव जिन गुफाओं में रहते थे, उनकी दीवारों को कैनवास बनाकर उस पर चित्र और रेखाचित्र बनाने शुरू कर दिया। संभवत : उन्होंने रेखांकन और चित्रांकन शायद अपने प्रतिवेश को चित्रित करने अथवा अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का दृश्य रिकार्ड करने के लिए भी किया हो। जिन पशुओं का वे शिकार किया करते थे या जिनसे उनकी संगत थी, उनका बारीकी से उत्कीर्णन और रंगीन चित्रण उनके द्वारा किया गया है।

अविनाश झा
डीएफएमओ, चित्रकूट

ये लोग मानवीय आकृतियों, अन्य मानवीय क्रियाकलापों, ज्यामिति के डिजाइनों और प्रतीकों के चित्र भी बनाते थे। कच्चे कोयले से खींची गई आकृतियों अथवा हेमेटाइट नामक पत्थर से तैयार किए गए अथवा पौधों से निकाले गए रंग से बनाए गए चित्रों अथवा पत्थर पर उत्कीर्ण नक्काशी के रूप में इनकी कलाकृतियां मौजूद हैं। इस प्राचीन कलाशैली को शैलचित्रों या राक पेंटिंग के नाम से जाना जाता है। यह मानव द्वारा निर्मित चिह्नों, चित्रों, मूर्तियों की प्राकृतिक पत्थर पर अंकित एक प्रकार की छाप है। शैल चित्रों में शिलाखंड और चबूतरों पर चित्रों, रेखा चित्रों के उत्कीर्णन, स्टेंसिल छपाई, आवास-स्थलों पर नक्काशी, शैलाश्रयों और गुफाओं के आंकड़े आदि शामिल हैं।

भारत में प्राचीनतम शैलचित्र पुरापाषाण काल के प्राप्त हुए हैं। भारत में शैल चित्रों की सर्वप्रथम खोज वर्ष 1867-68 में पुराविद् आर्किबोल्ड कार्लाइल ने की थी, जो स्पेन के आल्तामीरा शैल चित्रों की खोज से लगभग 12 वर्ष पहले की थी। एंडरसन, मित्र और घोष पहले अनुसंधानकर्ता थे, जिन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप में ऐसे अनेक स्थल खोजे थे। बुंदेलखंड में शैलचित्रों को सर्वप्रथम 1899 में जॉन कॉकबर्न ने मारकुंडी व मझगवां के घने जंगलों की गुफाओं में खोजा था। वर्ष 1907 ई में सीए सिल्बेर्ड ने सरहट, मालवा, अमावा, उल्दन, बरगढ़, करपाटिया व करिया कुंड में दर्जनों ऐसी कंदराओं को खोज निकाला, जहां पुरापाषाण काल के चित्र हैं। सन् 1961-62 में केपी जडिया ने बृहस्पति कुंड में मौजूद गुफाओं में शैल चित्रों को खोजा तो वी एस वाकनकर ने 1966-67 में चितरौंहा में, के कुमार ने कालिंजर दुर्ग में, छेदीलाल दुबे ने टेढ़ी पहाड़ी, काली पठार, मगर मुहा और कछौंह में और भौंरी के काली पाथर में इतिहासकार डॉ. संग्राम सिंह ने हजारों वर्ष पुराने दुर्लभ प्रागैतिहासिक शैल चित्र खोजकर आदिवासी कला व संस्कृति को उजागर किया। भीमबेटका की गुफाओं की खोज वर्ष 1957-58 में डॉ. वी.एस. वाकणकर द्वारा की गई थी। वर्ष 2003 में यूनेस्को ने इसे विश्व धरोहर स्थल घोषित किया था। सबसे पुराना चित्र लगभग 30 हजार वर्ष पुराना होने का अनुमान है, जो गुफाओं में होने के कारण सुरक्षित है। मध्य पाषाण चित्रकला लगभग 10,000 ईसा पूर्व से 8,000 ईसा पूर्व के बीच मानी जाती है। इस युग में मुख्य रूप से लाल रंग का उपयोग देखा गया है। इस अवधि के दौरान विभिन्न विषयों की संख्या कई गुना बढ़ गई, मगर चित्रों का आकार छोटा हो गया। इस युग में समूहों में शिकार करते लोग, कांटेदार भाले,नोकदार डंडे, तीर-कमान लेकर जानवरों का शिकार करते लोगों का चित्रण महत्वपूर्ण है। कुछ चित्रों में आदिमानवों को जाल-फंदे लेकर या गड्ढे आदि खोदकर जानवरों को पकड़ने की कोशिश करते मध्यपाषाण युग के कलाकार जानवरों को चित्रित करना अधिक पसंद करते थे। कुछ चित्रों में हाथी, जंगली सांड, बाघ, शेर, सूअर, बारहसिंगा, हिरन, तेंदुआ, चीता, गैंडा, मछली, मेढक, छिपकली, गिलहरी जैसे छोटे-बड़े जानवरों और पक्षियों को भी चित्रित किया गया है।

विंध्य पर्वत श्रृंखला में यूपी के बांदा, इलाहाबाद, चित्रकूट और मध्य प्रदेश के सतना, रीवा और छतरपुर में दर्जनों स्थानों पर शैल चित्रों को देखा जा सकता है। इनमें भीमबेटका, होशंगाबाद एवं मिर्जापुर के शैलचित्र विश्वविख्यात हैं, लेकिन चित्रकूट में भी इन शैलचित्रों की बहुतायत है। चित्रकूट के अमवारी, सरहट, करपटिया, भौंरी, भूरी दाई, खंभेश्वर इत्यादि स्थानों पर आदिमानवों के चित्रकलाओं अवशेष बिखरे पड़े हैं। भीमबेटका पुरापाषाण कालीन और मध्यपाषाण कालीन अवशेषों से भरी पड़ी है, जहां 10 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में लगभग 800 शैलाश्रय मौजूद हैं। इनमें से 500 शैलाश्रयों में चित्र पाए जाते हैं। भीमबेटका में कुछ स्थानों पर चित्रों की 20 परतें तक हैं, जो एक-दूसरे पर बनाए गए हैं। संभवतः जब किसी कलाकार को अपनी रचना पसंद नहीं आती थी तो वह उस पर अपनी दूसरी रचना चित्रित कर लेता था। दूसरा कारण यह हो सकता है कि वे चित्र और स्थान पवित्र या विशिष्ट माने जाते थे और उन पर कलाकार बार-बार चित्र बनाते थे। यह भी संभव है कि भिन्न-भिन्न पीढ़ियों के लोगों ने भिन्न-भिन्न समय पर एक ही क्षेत्र में ये चित्र बनाए थे। शिकार के दृश्यों, जानवरों के समूहों और नृत्य करती मानव आकृतियों वाले शैलोत्कीर्ण जम्मू-कश्मीर की शैल चित्र कला के मुख्य विषय हैं। उत्तराखंड में कुमाऊं की पहाड़ियों में भी कुछ शैल चित्र पाए गए हैं। शैलोत्कीर्ण कर्नाटक में भी देखे जाते हैं,जहां पत्थर पर मवेशियों, हिरणों और शिकार के दृश्यों जैसी आकृतियों को दर्शाया गया है। उत्तर पुरापाषाण युग के चित्र हरी और गहरी लाल रेखाओं से बनाए गए हैं। शैलाश्रयों गुफाओं की दीवारें क्वार्टजाइट से बनाई गई थीं। रंग और रंजक द्रव्य विभिन्न पत्थरों तथा खनिजों को कूट-पीस कर तैयार किए जाते थे। ताम्रपाषाण युग में हरे और पीले रंग का उपयोग करते हुए चित्रों की संख्या में वृद्धि देखी गई। इस अवधि के चित्रों का समूह दृश्यों को पर केंद्रित हैं। लेकर चलने के साथ घोड़ों की सवारी पुरुषों के कई झड़पों की तैयारियों का संकेत देते हैं। चित्रों में भी वीणा की तरह अन्य वाद्य यंत्रों का चित्रण किया गया है। कुछ चित्रों में सर्पिल रेखा विषमकोण और वृत्त जैसी जटिल ज्यामितीय आकृतियां हैं। छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले स्थित गुफाओं जैसे उड़कुड़ा, गरगोड़ी, खापरखेड़ा, गोटिटोला, कुलगांव आदि में मानव मूर्तियों, जानवरों, हथेलियों ठप्पा बैलगाड़ियों आदि का चित्रण है। छत्तीसगढ़ के सरगुजा जिले में रामगढ़ पहाड़ियों के जोगीमारा गुफाओं के चित्र एक हजार ईसाई पूर्व के हैं। इसी तरह के चित्रों को कोरिया जिले के घोड़ासर और कोहबर शैल कला स्थलों में देखा जा सकता है। दुर्ग जिला में स्थित चितवा डोंगरी के शैलचित्रों में गधे पर सवार एक चीनी व्यक्ति, ड्रैगन और कृषि वैज्ञानिकों के चित्र मिले हैं।

महाराष्ट्र के नरसिंहगढ़ में है। अधिकांश चित्र युद्ध के चित्रित करने तीर-कमान वाले पुरुषों और हाथियों करने वाले चित्र हैं,जो

उत्तराखंड में कुमाऊं की पहाड़ियों में भी कुछ शैल चित्र मिले हैं। आंध्रप्रदेश और कर्नाटक की ग्रेनाइट की चट्टानों ने नवपाषाण काल के मानव को अपने चित्र बनाने के लिए प्रेरित किया। यहां कुपगल्लू, पिकलिहाल और टेक्कलकोटा अधिक प्रसिद्ध हैं। यहां कुछ चित्र सफेद रंग के हैं, कुछ लाल रंग के और कुछ सफेद पृष्ठभूमि पर लाल रंग के। ये चित्र परवर्ती ऐतिहासिक काल, आरंभिक ऐतिहासिक काल और नवपाषाण काल के हैं। इन चित्रों के विषय सांड़, हाथी, सांभर, चिंकारा, भेड़, बकरी, घोड़ा, शैलकृत मानव, त्रिशूल आदि हैं। वनस्पतियों के चित्र बहुत ही कम पाए जाते हैं। कुपगल्लू के एक चित्र में बड़े-बड़े अंगों वाले कामोद्दीप्त पुरुषों को स्त्रियों को भगाकर ले जाते हुए दिखाया गया है। उत्तर प्रदेश के मुर्हाना पहाड़ में भी कई शैलाश्रय देखने को मिलते हैं जिनमें कई जानवरों, पक्षियों आदि के चित्रों को शामिल किया गया है।

शैल चित्रों ये रंग अब तक इसलिए अब तक अक्षुण्ण रहे हैं, क्योंकि चट्टानों की सतह पर जो ऑक्साइड मौजूद थे,उनके साथ इन रंगों की रासायनिक प्रतिक्रिया ने इन्हें स्थायी बना दिया। आदिमानवों ने अपने चित्र इन शैलाश्रयों की सतहों, दीवारों और भीतरी छतों पर बनाए, ताकि वो सुरक्षित रह सके। शैलाश्रयों में पाए गए कुछ अत्यंत सुंदर चित्र बहुत ऊंचे स्थान पर या शैलाश्रय की छत के पास बने हुए हैं। संभवतः गुफाओं के बाहर, पेड़ों पर, बाहरी चट्टानों, छाल, खाल आदि पर बने चित्र तत्वों या समय के कारण टूट-फूट से बच नहीं सके। वे कला को कुछ विशेष आध्यात्मिक,जादुई,अलौकिक मानते थे या फिर घटनाओं, ऋतुओं आदि के प्रतीकात्मक चिह्नक,लेकिन वे चाहते थे कि ऐसी कला को संरक्षित किया जाए। पुराविदों द्वारा इन्हें पहचाने जाने से पूर्व स्थानीय निवासी इन शैलचित्रो को अंधविश्वास वश चुड़ैलों, भूत प्रेतों द्वारा निर्मित चिन्ह इत्यादि मानते थे। इन सभी शैल चित्रों को समग्रता में देखने से यह बात निकलकर आती है कि भले ही उस काल में विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले आदिमानवों की बीच संचार के साधन भले न रहे हों,परंतु उनकी सोच, विचार, चित्रशैली, विषय वस्तु, तरीका लगभग समान था। इतना ही नहीं आज भी इन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों के जीवनशैली में इन चित्रकला शैली का स्थान है। आदिवासियों के कोहबर या बोहबर कलाशैली इसी तरह की है। चित्रकूट में मानिकपुर के कोल आदिवासी कुछ शैल चित्रों को देवी मानकर पूजा करते हैं। स्वाभाविक रूप से मानवीय सभ्यता के सांस्कृतिक इतिहास की शुरुआत इन शैल चित्रों में देखी जा सकती है।